फरवरी 2024

धर्म एवं अध्यात्म के सत्यज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष – 88 | अंक – 2 | प्रति – ₹ 25 | ₹ – 300 वार्षिक

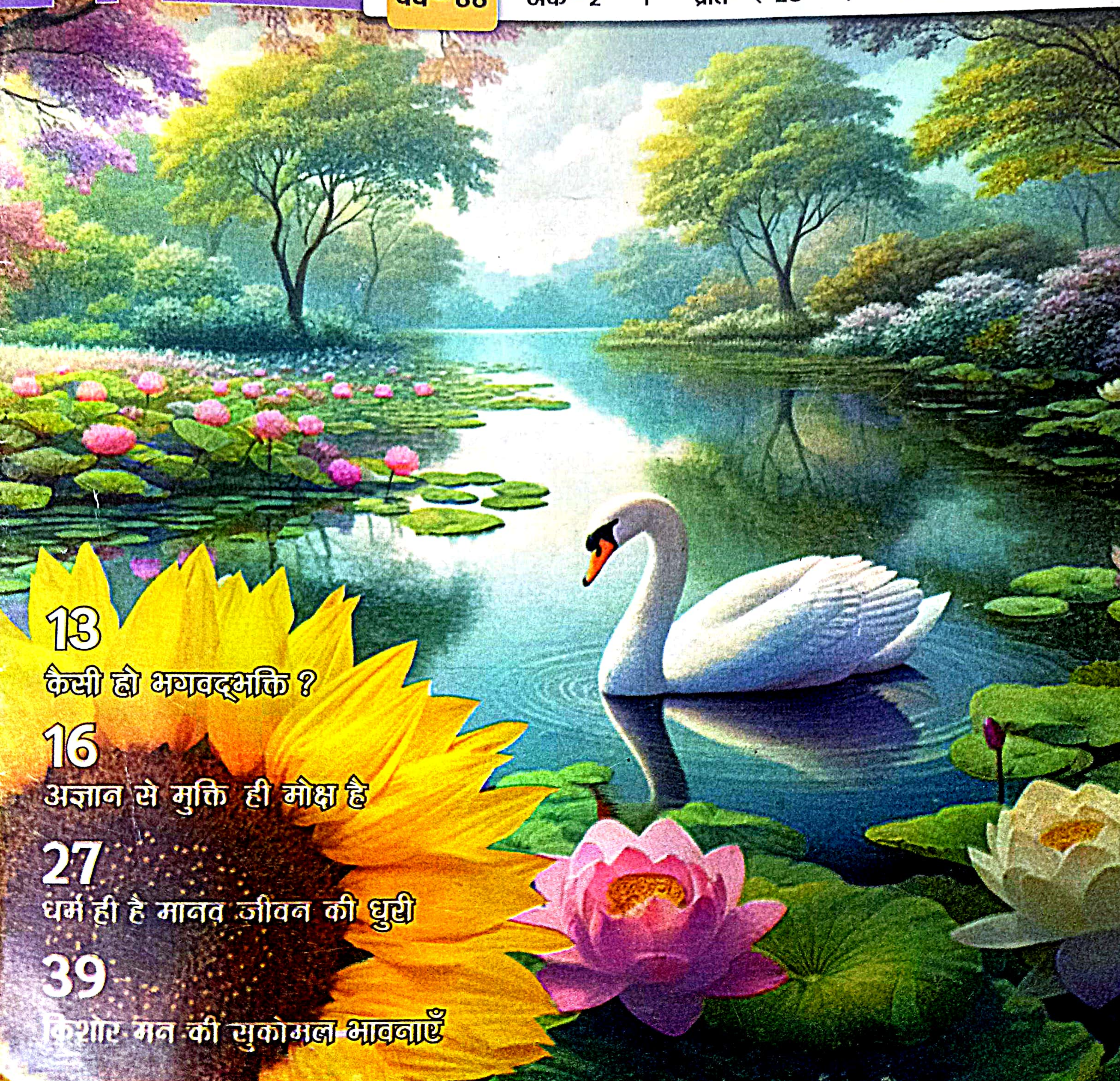

13
कैसी हो भगवद्भक्ति ?
16
अज्ञान से मुक्ति ही मोक्ष है
27
धर्म ही है मानव जीवन की धुरी
39
किशोर मन की सुकोमल भावनाएँ

75 वर्ष पू
अखण्ड ज्योति

फरवरी 1949
(पृष्ठ 26)

क्या तुम स्वस्थ हो ?

शरीर जड़ है, इसलिए स्वास्थ्य की जिम्मेदारी उस पर नहीं पड़ती, पड़ती है मन पर। मन ही एक ऐसा प्रमुख यंत्र है, जो स्वदेव के आदेशों को वहन करता है। इस मन के बुद्धि, चित्त और अहंकार तीन साथी और हैं, जिनमें सबसे प्रबल साथी है अहंकार। इसलिए जब मन स्वदेव की बात न सुनकर अहंकार के आदेशों पर चलना आरंभ करता है, अस्वस्थता का तभी से श्रीगणेश होता है। जब तक बुद्धि पर स्वदेव की कृपा रहती है; तब तक मन के कार्यों पर बुद्धि विवेचना करती है; समालोचना करती है, पर जैसे–जैसे उनकी यह कृपा हटती जाती है अर्थात बुद्धि पर भी अहंकार का प्रभाव होता जाता है, वैसे–वैसे वह भी मन का समर्थन करना आरंभ कर देती है। और तब ये सब मिलकर खेल खेलते हैं। आत्मदेव का जब तक इनके साथ संपर्क रहता है, शक्तियाँ तो इन्हें मिलती हैं; क्योंकि ये लोग ज्ञान के स्रोत को बंद कर देते हैं, शक्ति का स्रोत तो जारी रहने देते हैं; लेकिन ज्ञान का स्रोत बंद कर देने पर शक्ति का स्रोत बहुत दिनों तक जारी नहीं रह सकता, इसलिए धीरे–धीरे शक्ति का ह्रास होता रहता है। लोग समझते हैं कि वे अस्वस्थ होते जा रहे हैं अर्थात 'स्व' के साथ संबंध विच्छेद होना आरंभ हो गया है और फिर एक दिन आता है कि शक्ति का स्रोत भी बंद हो जाता है तब मृत्यु हो जाती है। मृत्यु क्या है? स्व के साथ संबंध विच्छेद।

— श्रीराम शर्मा आचार्य

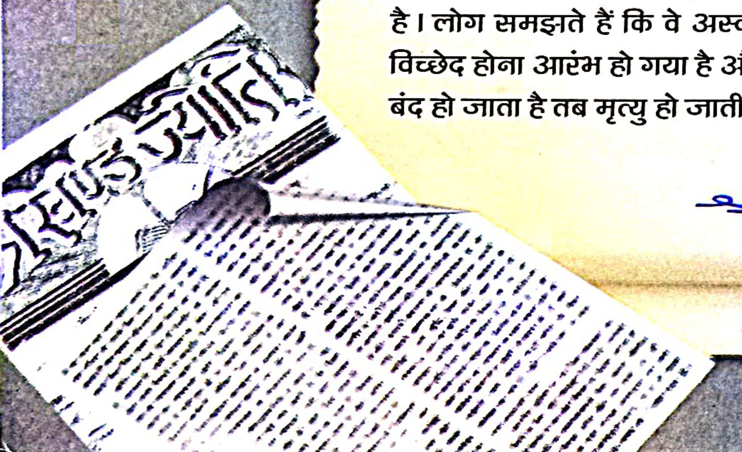

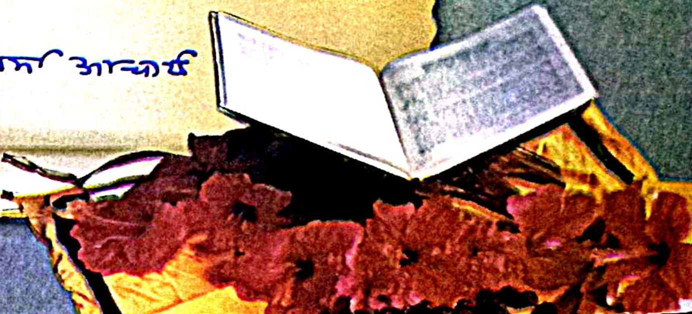

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

अखण्ड ज्योति

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449 2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	88
अंक	:	02
फरवरी	:	2024
माघ-फाल्गुन	:	2080
प्रकाशन तिथि	:	01.01.2024

वार्षिक चंदा

भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	6000/-

संभवामि युगे-युगे

'संभवामि युगे-युगे'—संपूर्ण असंभव को सहज संभव करने वाले परमात्मा का वचन है। प्रकृति को परम पुरुष का वरदान है। भक्तों के रक्षण-संरक्षण के लिए भगवान का आश्वासन है। भू-देवी के कष्टों को दूर करने के लिए उनके स्वामी की प्रतिज्ञा है। सृष्टि को स्रष्टा का आशीष है। धर्म को धीरज देता हुआ परात्पर चेतना का संकल्प है। जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए जीवनदाता की जीवन-लीला है।

मैं आऊँगा। युग-युग में आऊँगा। चेतना की उच्चतम कक्षा से सभी अवरोधों-प्रतिरोधों को नष्ट करता हुआ धरती पर अवतार लूँगा। सघन अँधेरों में ज्योतिर्मय प्रकाश बिखेरने के लिए, विष को अमृत में परिवर्तित करने के लिए, मरण-क्रंदन में जीवन महोत्सव रचाने के लिए मैं आऊँगा।

मनुष्यों को जब मनुष्यता विस्मृत होने लगेगी, साधुओं को साधुता, साधकों को साधना की सुधि जब बिसर जाएगी; तब मेरा अवतरण होगा। असुरों पर अंकुश के लिए, दुष्टों के दमन के लिए, दुर्बलों की दुर्गति दूर करने के लिए निश्चत ही मेरा आगमन होगा।

मेरा अवतरण मनुष्य में देवत्व के उदय को, धरती पर स्वर्ग के अवतरण को संभव बनाएगा। तब भय, भ्रम दूर होंगे। सद्बुद्धि का सन्मार्ग प्रशस्त होगा। परम शक्ति का प्रकाश ही अपने समस्त वचनों, वरदानों, आश्वासनों, आशीष एवं प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए प्रज्ञावतार के रूप में युगावतार बन प्रकाशित व प्रकट हुआ। □

गायत्री ज्ञान मन्दिर
शान्ति कुंज भवन
9/181, इन्दिरा नगर, लखनऊ
मो:- 9451387585, 9335902617

विषय सूची

- आवरण—1 — 1
- आवरण—2 — 2
- संभवामि युगे-युगे — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  चैतन्य हैं हम या यह एक भ्रम मात्र है? — 5
- अष्टादश विद्याओं का उद्‌भव हैं वेद — 7
- पुनर्जन्म — 11
- कैसी हो भगवद्‌भक्ति? — 13
- अज्ञान से मुक्ति ही मोक्ष है — 16
- सफल जीवन की दिशाधारा — 21
- भगवद्‌भक्ति का मार्ग — 23
- **पर्व विशेष—संत रविदास जयंती**
  संत रविदास की भक्ति-साधना — 25
- धर्म ही है मानव जीवन की धुरी — 27
- दैनिक जीवन में अध्यात्म — 32
- **परमपूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा—17**
  कैसे हुआ प्रथम सहस्रकुंडीय यज्ञ — 35
- किशोर मन की सुकोमल भावनाएँ — 39
- अदृश्य हत्यारा है परमाणु विकिरण — 41
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—178**
  कौटिल्य का प्रशासनिक चिंतन — 43
- **युगगीता—285**
  सद्‌भाव व साधुभाव के साथ करें कर्म — 47
- **विश्वविद्यालय परिसर से—224**
  वसुधैव कुटुम्बकम् की आधारशिला है विश्वविद्यालय — 49
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  विषम परिस्थितियों में हमारे दायित्व (उत्तरार्द्ध) — 53
- **साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला**
  सतयुग का सूर्योदय — 60
- **अपनों से अपनी बात**
  नवजागरण की प्रभातवेला — 63
- गुरुवर का संदेश (कविता) — 66
- आवरण—3 — 67
- आवरण—4 — 68

आवरण पृष्ठ परिचय

॥ ऋतूनां कुसुमाकरः ॥

फरवरी-मार्च, 2024 के पर्व-त्योहार

मंगलवार	06 फरवरी	षट्‌तिला एकादशी	मंगलवार	12 मार्च	रामकृष्ण परमहंस जयंती/ फुलरिया दूज
शुक्रवार	09 फरवरी	मौनी अमावस्या	शुक्रवार	15 मार्च	सूर्य षष्ठी
बुधवार	14 फरवरी	वसंत पंचमी/बोध दिवस	रविवार	17 मार्च	होलाष्टक
गुरुवार	15 फरवरी	सूर्य षष्ठी	बुधवार	20 मार्च	आमलकी एकादशी
मंगलवार	20 फरवरी	जया एकादशी	रविवार	24 मार्च	होलिका दहन
शनिवार	24 फरवरी	संत रविदास जयंती	सोमवार	25 मार्च	होली
बुधवार	06 मार्च	विजया एकादशी	शुक्रवार	29 मार्च	गुड फ्राइडे
शुक्रवार	08 मार्च	महाशिवरात्रि			

★ यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक*

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विशिष्ट-सामयिक चिंतन

चैतन्य हैं हम या यह एक भ्रम मात्र है ?

चेतनता या काँशसनेस एक ऐसी चुनौती कही जा सकती है, जिसका सम्यक समाधान वर्तमान वैज्ञानिक उपलब्धियों के परिक्षेत्र से बाहर का कहा जा सकता है। संभवतया यही कारण है कि वैज्ञानिकों ने इसे आज के समय की सबसे गंभीर वैज्ञानिक चुनौतियों में सम्मिलित किया है। उनके ऐसा कहने के पीछे का कारण भी स्पष्ट है।

हमारे पैर में चोट लगती है तो पैर की चोट जो कि भौतिक घटनाक्रम है, एक चैतन्य घटनाक्रम को जन्म देता है, जिसमें हम उस चोट के दरद को महसूस कर पाते हैं और कई बार तो किसी भौतिक घटनाक्रम की भी आवश्यकता नहीं होती है और एक चैतन्य घटनाक्रम घटित हो जाता है। उदाहरण के तौर पर किसी को याद करके मन में जो भावनाएँ जन्म लेती हैं, उन्हें हम किस रूप में परिभाषित करें?

वैज्ञानिकों की दृष्टि में प्रश्न स्पष्ट है, पर उत्तर जटिल है। प्रश्न यह है कि इन घटनाक्रमों का आधार क्या होगा? हमारे भीतर चेतनता को जन्म देने का कार्य कौन करता है? 16वीं सदी में प्रसिद्ध वैज्ञानिक देकार्त ने ड्यूअलिज्म के सिद्धांत के माध्यम से यह कहने का प्रयत्न किया था कि इस संसार में माइंड स्टफ या मन से संबंधित चेतनात्मक ज्ञान और मैटर स्टफ या जड़ शरीर से संबंधित ज्ञान एक दूसरे से भिन्न हैं और इनमें कभी भी एकात्मता संभव नहीं है।

एक समय बड़ा प्रभावी माना जाने वाला यह सिद्धांत अब अधिकतर वैज्ञानिकों द्वारा ठुकरा दिया गया है। आश्चर्य की बात यह है या यों कहें कि यह अवश्यंभावी ही था कि अब ज्यादातर वैज्ञानिक चेतनता के जिस सिद्धांत को मानते हैं—वह सिद्धांत वही है, जिसे वर्षों पहले भारत की भूमि पर आचार्य शंकर ने जन्म दिया था।

विगत वर्षों में किए गए वैज्ञानिक शोध ऐसा मानते हैं कि जिसे हम संसार मानते हैं या संसार को अनुभव करने का जो हमारा भाव या चेतना है, वह मात्र एक भ्रम है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। उदाहरण के तौर पर यह जानकर अनेकों को आश्चर्य होगा कि अनेक वस्तुओं का अपना कोई रंग नहीं और हमारा मस्तिष्क उनके सरलीकरण के लिए उनको एक तरह से कलर कोड कर देता है, ताकि बहुत-सी जानकारियों को साथ-साथ संगृहीत करने में सुविधा रहे।

कुछ ऐसा ही वर्तमान समय में सर्वमान्य वैज्ञानिक अवधारणा कहती है। टफ्ट्स विश्वविद्यालय, अमेरिका के वैज्ञानिक डेनियल डेनेट कहते हैं कि जिसे हम चेतनता या अनुभव कहते हैं, वह वस्तुतः मन के द्वारा पैदा किया गया भ्रम मात्र है। भ्रमवाद या इल्यूजनिज्म के नाम से विख्यात यह वैज्ञानिक अवधारणा लगभग उसी चिंतन की पुष्टि करती है, जिसे वर्षों पहले आचार्य शंकर द्वारा 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' कहकर परिभाषित किया गया था।

ऐसा नहीं है कि इस निष्कर्ष पर वैज्ञानिक तुरंत पहुँच गए हों। सन् 1998 में प्रसिद्ध वैज्ञानिकों में इस बात को लेकर एक शर्त लगी थी कि हमारे शरीर में चेतनता का जो केंद्र है, उसे वैज्ञानिक परीक्षणों से खोजा जा सकता है। क्रिस्टॉफ कॉक

सहमत थे कि ऐसा संभव है; जबकि डेनियल चाल्टर्स ने कहा कि ऐसा हो पाना संभव नहीं।

क्रिस्टॉफ के ऐसा मानने के पीछे एक कारण भी था। वो उस समय एलन इंस्टीट्यूट के निदेशक थे, जिसकी स्थापना उन्होंने DNA के खोजकर्त्ता फ्रांसिस क्रिक के साथ की थी। उनका ऐसा मानना था कि जिस तरह जीवन के आधार DNA को खोजा जा सका, वैसा ही चेतनता के साथ भी संभव है।

दुर्भाग्यवश ऐसा हो न सका। कभी वैज्ञानिक परीक्षणों में क्लॉस्ट्रम को चेतनता का केंद्र माना गया तो कभी थैलेमस को। सन् 2021 में न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय में ओमरी राका द्वारा किए गए परीक्षण में पता चला कि प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स को काँशसनेस का रिले सेंटर कहा जा सकता है, पर समग्र अनुभव के लिए ये एकाकी रूप से जिम्मेदार नहीं है।

यदि बाह्य जगत् के अनुभवों का संग्रहीकरण यहाँ हो भी रहा हो तब भी हमारी, हमारे प्रति जागरूकता (यह कि हम हैं) और हमारी जागरूकता के प्रति जागरूकता (यह कि हम यह अनुभव कर पा रहे हैं कि हम हैं)—इनका केंद्र ये नहीं है। सारांश में यह कहा जा सकता है कि वर्तमान वैज्ञानिक परीक्षण ये सिद्ध करने में असमर्थ हैं कि हमारे अस्तित्व में काँशसनेस का भौतिक केंद्र कहाँ और क्या है?

इस क्षेत्र में और किए गए परीक्षणों ने यह स्पष्ट किया कि मस्तिष्क एक ग्लोबल वर्कप्लेस की तरह कार्य करता है, जहाँ पर बहुत सारे अनुभव तो अचेतन मन में ही एकत्रित होते हैं और कुछेक को हमारा मस्तिष्क एकरूपता प्रदान करने के लिए चेतन मन को उपलब्ध कराता है।

इस सिद्धांत को इंटीग्रेटेड इंफोर्मेशन सिद्धांत कहकर पुकारा गया। इस सिद्धांत को चुनौती देने वाले वैज्ञानिकों में प्रिंसटन विश्वविद्यालय के माइकल ग्रेजिनो एवं ससेक्स विश्वविद्यालय के डॉ. अमित सेठ हैं, जिनका यह मानना है कि चेतनता एक परिष्कृत मानसिक प्रक्रिया है, परंतु तब भी यह एक भ्रम के अतिरिक्त कुछ और नहीं।

हम चैतन्य हैं, इस बात का परिचय वैज्ञानिक दृष्टि से अनेकों माध्यम से मिलता है। उदाहरण के तौर पर, स्वयं को पहचानना, अपने मन एवं मानसिक क्रियाकलापों के प्रति जागरूकता, निर्णय क्षमता और गलत निर्णय लेने पर दुःखी अनुभव करना, तनाव को अनुभव करना, नींद एवं सपनों का आना इत्यादि। वैज्ञानिक दृष्टि से इन सारे अनुभवों का होना हमारे चेतन या काँशस होने का प्रमाण है।

योगसन्न्यस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय॥

— श्रीमद्भगवद्गीता (4/41)

अर्थात हे धनंजय! योग के द्वारा जिसका समस्त कर्मबंधनों से विच्छेद हो गया है और विवेक द्वारा समस्त संशयों का नाश हो गया है, ऐसा पुरुष कर्म से नहीं बँधता।

धीरे-धीरे अब सभी वैज्ञानिक शोध इस ओर इशारा कर रहे हैं कि यह अनुभव एक भ्रम या इल्यूजन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। भ्रम की उत्पत्ति का कारण वैज्ञानिक क्रमिक विकासवाद या इवोल्यूशन को मानते हैं, परंतु भारतीय अवधारणा इस दृष्टि से एकमत रही है कि संभवतया इस भ्रम का कोई भी कारण नहीं।

यह भ्रम हमने मायारूपी आवरण के द्वारा स्वयं ही उत्पन्न किया है और अब उससे मुक्त होने का उपाय हम ढूँढ़ रहे हैं। वेदांत इसे मोक्ष या मुक्ति कहकर पुकारता है और संभव है कि अंततः समस्त वैज्ञानिक शोधें भी इसी एक स्थान पर या बिंदु पर आकर एकमत हो जाएँ। विगत दिनों के घटनाक्रम तो कुछ ऐसा ही परिलक्षित करते हैं। ❑

अष्टादश विद्याओं का उद्भव हैं वेद

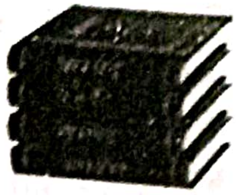

भारतीय ज्ञान-विज्ञान और संस्कृति की महत्ता एवं असीम व्यापकता की चर्चा पहले की गई है। यहाँ उसी क्रम के कुछ विशिष्ट पहलुओं का परिचय कराना आवश्यक हो जाता है। यह सर्वविदित है कि वेदमूर्ति के रूप में स्वयं परमपूज्य गुरुदेव का जीवन दर्शन हमारे समक्ष प्राचीन ऋषियों के सिद्धांतों व सनातन संस्कृति के आदर्शों का साक्षात् प्रकटीकरण है। उनके विचारों, अभियानों एवं क्रियाकलापों में कहीं भी वैदिक सिद्धांतों का अतिक्रमण नहीं हुआ है।

भारतीय ज्ञानस्रोतों का केंद्र जिन अष्टादश विद्याओं को माना जाता है, उन सभी विद्याओं की मूलभूत विचारणाओं का समावेश उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व में दिखाई देता है। वैदिक साहित्य का भाष्य और युगानुरूप सरलतम व्याख्या उनके द्वारा लिखित अपरिमित साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट पक्ष है। वेद मानवीय ज्ञान-विज्ञान की सर्वोच्च धरोहर हैं तथा सर्वाधिक प्राचीन होने के साथ-साथ ये अद्यतन सर्वांगपूर्ण जीवन की पथ-प्रदर्शक ज्ञानराशि का अकूत भंडार भी हैं।

अतः वेद-ज्ञान की महत्ता और समयानुरूप सरलतम विवेचना के माध्यम से पूज्य गुरुदेव ने इसकी उपादेयता से जन-जन को जोड़े जा सकने का अद्वितीय पुरुषार्थ किया है। आज करोड़ों घरों एवं सार्वजनिक पुस्तकालयों व अध्ययन केंद्रों में गुरुदेव द्वारा लिखित आर्षग्रंथों के भाष्य की प्रतिष्ठापना व स्वाध्याय का क्रम प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

यहाँ पूज्यवर के वैदिक भाष्य ग्रंथों की चर्चा इसलिए भी आवश्यक है; क्योंकि वेद का ज्ञान सूत्रात्मक, प्रतीकात्मक और गुह्य-रहस्यमय है तथा उन पर किए गए भाष्यों, व्याख्याओं की सुदीर्घ परंपरा में भी पर्याप्त भाषागत एवं भावगत दुरूहता है। ऐसे में इस दिव्य ज्ञान का अवगाहन जनसाधारण के लिए सहज नहीं है।

अतः जनसामान्य के लिए सहजता और उपयुक्तता को ध्यान में रखकर ही गुरुदेव ने वेदों की सरलतम व्याख्या की है। वैदिक मंत्रों में समाहित ज्ञान-विज्ञान एवं विभिन्न उपयोगी जानकारी प्राप्त करने के लिए पूज्यवर के ग्रंथों की शरण लेना सर्वोत्तम और सहज उपलब्ध उपाय है।

वेदों को भारतीय ज्ञान-परंपरा का प्रतिनिधित्व करने वाली अष्टादश विद्याओं में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त है। भारतीय ज्ञान के उद्भव और विकास का मूल स्थान वेद ही हैं। वेद शब्द का अर्थ और स्वरूप अत्यंत व्यापक है। वेद अर्थात आत्मा के स्तर पर अनुभव किया जाने वाला अनुभूतिजन्य ज्ञान। यह व्यष्टि और समष्टि के रहस्य को अंतरात्मा के नेत्रों से देख सकने में समर्थ ऋषियों के विचारों का सार संग्रह है।

भारतीय संस्कृति की समस्त ज्ञान-धाराएँ और विद्याएँ बीज रूप में वेद की विचारणा में विद्यमान हैं। सुविधानुसार इस ज्ञानराशि को विषयानुरूप संहिताओं के रूप में लिपिबद्ध किया गया है, जिन्हें हम ऋग्, यजु, साम और अथर्व के नाम से जानते हैं।

श्रुति, निगम, आगम, छंदस, आम्नाय, स्वाध्याय आदि नामों से भी वेद-ज्ञान को प्रकट

किया गया है। संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ग्रंथों में संपूर्ण वैदिक साहित्य समाहित है। छह वेदांग, छह दर्शन, चार उपवेद—सभी इसी का विस्तार और व्याख्या-विवेचना हैं।

ऋषियों की इस गुह्य ज्ञान-संपदा को विज्ञजनों ने तीन प्रमुख धाराओं में प्रवाहित किया है—कर्मकांड, ज्ञानकांड और उपासनाकांड परमपूज्य गुरुदेव के भाष्य में वैदिक साहित्य के ये तीनों आयाम सरलतम व्याख्या के साथ मौजूद हैं।

यह व्याख्या उक्त तीनों धाराओं को समान महत्त्व देते हुए समन्वय की दृष्टि उत्पन्न करती है; जबकि पूर्ववर्ती अनेक भाष्यकारों-व्याख्याकारों की दृष्टि में किसी एक धारा की प्रधानता देखी जा सकती है।

वस्तुतः वेद जीवन व जगत् के समग्र, संपूर्ण और आध्यात्मिक ज्ञान का पर्याय हैं। कर्म, ज्ञान और भक्ति की समन्वयवादी दृष्टि को अपनाकर ही इसके महत्त्व और वैशिष्ट्य को अधिक गहराई से आत्मसात् किया जा सकता है। समकालीन युग में वेदों के प्रति यह समन्वयवादी दृष्टिकोण महर्षि दयानंद के पश्चात परमपूज्य गुरुदेव के भाष्य में ही दिखाई देता है।

वर्तमान समय में वैदिक ज्ञान-विज्ञान से परिचित नहीं होने के कारण ही भारतीय जीवन और समाज में अनेक विसंगतियाँ और मूल्यहीनता दिखाई देती हैं। जो संस्कृति सनातन-शाश्वत ज्ञान की धुरी पर पल्लवित-पुष्पित हुई और विश्वमानवता की प्रथ-प्रदर्शक बन विश्वगुरु का जिसने गौरव प्राप्त किया, वही संस्कृति आज अपनी ज्ञान-संपदा को सुरक्षित-संरक्षित रखने की चुनौतियों से जूझ रही है।

ऐसे में भारतीय संस्कृति के प्रति कृतज्ञता की भावना से ओत-प्रोत प्रत्येक जन का यह पावन कर्त्तव्य है कि वेदरूपी ज्ञान की अमूल्य ऋषि धरोहर को पुनः प्रतिष्ठित करने तथा इसके मर्म और महत्त्व से जन-जन को जोड़ने का कार्य युगधर्म समझकर संपन्न करे।

जनसाधारण में यह भावना प्रगाढ़ है कि वेद, उपनिषद् आदि का संबंध मात्र धर्म-अध्यात्म के क्षेत्र से जुड़े लोगों से है न कि प्रत्येक व्यक्ति से। जबकि सच्चाई यह है कि यह ज्ञान समान रूप से संपूर्ण मानव जाति और उसके प्रत्येक वर्ग और स्तर के लिए उपयोगी है।

जीवन के लौकिक और अलौकिक, दोनों पहलुओं की दृष्टि से इनमें अत्यंत महत्त्वपूर्ण प्रेरणाएँ और कल्याणकारी मार्गदर्शन मौजूद हैं। धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन के साथ-साथ प्रत्येक व्यक्ति के एवं समाज के व्यावहारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं के लिए भी वैदिक ज्ञान-संपदा का अत्यंत महत्त्व है।

वस्तुतः मनुष्य जीवन के जितने भी आयाम हैं, उन सभी से वैदिक ज्ञान-विज्ञान का गहरा संबंध और महत्त्व है। मानव जीवन की नैतिकता और आचरण संबंधी कर्त्तव्य-बोध के लिए वेद ही सबसे प्रामाणिक स्रोत हैं। इनमें करने योग्य कर्त्तव्यों को मानव धर्म से विभूषित कर धर्माचरण की विस्तृत व्याख्या मौजूद है।

ऋषियों की यह आचरण संबंधी व्याख्या वर्तमान में चरित्रहीनता और मूल्यहीनता से त्रस्त समाज एवं विश्व के लिए अत्यंत उपादेयी है। उन्होंने मनुष्य जीवन के प्रत्येक कर्त्तव्य जैसे—पिता-पुत्र, माता-पिता, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य, परिवार-समाज, व्यक्ति-राष्ट्र, राष्ट्रीयता, विश्व

बंधुत्व, परोपकार, उद्योग, दान-धर्म, अतिथि-सत्कार, सेवा-सहायता आदि के संदर्भ में व्यक्ति का आचरण व धर्म क्या हो, इसका विस्तृत उपदेश दिया है। इसके साथ ही हमारी सनातन प्राचीन सभ्यता, संस्कृति और समाज के आदर्शस्वरूप का विस्तृत विवरण और सामाजिक व्यवस्था का मूल्य आधारित दिग्दर्शन भी इसमें मौजूद है।

ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्त्व की दृष्टि से भी वेद विश्व की सबसे प्राचीन लिखित धरोहर हैं। ऋग्वेद के सबसे प्राचीन ग्रंथ होने को विश्व के सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। वैदिक वाङ्मय को आधार बनाकर भाषा दर्शन और भाषा विज्ञान ने विकसित आकार प्राप्त किया है। प्राचीन सभ्यताओं, वंश, जातियों, गंगा आदि पवित्र नदियों, स्थानों के ऐतिहासिक एवं गौरवशाली साक्ष्य भी हमें वेद की ऋचाओं में ही प्रामाणिक रूप से प्राप्त होते हैं।

वेदों के शास्त्रीय महत्त्व से तो सारे विश्व का विज्ञ समाज अभिभूत है। इसका कारण यह है कि इनमें दार्शनिक सिद्धांत, अध्यात्म, मनोविज्ञान, आयुर्वेद, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, गणित, रसायनशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, जंतुविज्ञान, भूगर्भविज्ञान, दृष्टिविज्ञान, अर्थशास्त्र, नाट्यशास्त्र, कामशास्त्र, प्रौद्योगिकी, भाषाविज्ञान और विभिन्न कलाओं से संबद्ध अनेक मंत्रों का साक्षात्कार होता है।

सभी विद्याओं का स्रोत यहीं से प्रस्फुटित हुआ है। इसीलिए हमारे ऋषियों-मुनियों ने वेदों को **'सर्वज्ञानमयो हि सः'** कहकर इनके अवगाहन और अनुशीलन की समृद्ध पद्धति का निर्माण किया तथा इसे पूर्ण दिव्यता के साथ जन-जन तक पहुँचाने की पवित्र परंपराओं की स्थापना की। प्राचीन गुरुकुलों, आरण्यकों, विश्वविद्यालयों आदि शिक्षण स्थलों के उद्भव, विकास और वैभव प्राप्ति के पीछे का मूल कारण वेदों में समाहित शास्त्रीय तत्त्वदर्शन ही रहा है।

भारतीय समाज-व्यवस्था, न्याय-व्यवस्था और राजनीतिशास्त्र के प्रारंभिक स्वर वेदों में ही गुँजायमान हुए हैं। राज्य सिद्धांत, राज्य व राजा के कर्त्तव्य, निर्वाचन, न्यायविधान, संचालन की नीतियाँ, दंड-प्रक्रिया, गुप्तचर एवं सैन्य-व्यवस्था, प्रजा के कर्त्तव्य, शासन की विभिन्न प्रणालियाँ जैसे अनेक राजनीतिशास्त्र से संबद्ध ज्ञान के स्रोत वैदिक साहित्य की महत्ता को बढ़ाते हैं।

सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र की व्यवस्था के आदर्शवादी सूत्रों एवं सिद्धांतों के केंद्र भी वेदों में ही मौजूद हैं। कृषि, व्यापार, वाणिज्य, नाप-तोल, मुद्राएँ, शिल्प, आभूषण आदि के संबंध में अनेक मंत्रों में वर्णन है।

धार्मिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्त्व की दृष्टि से तो वेदों का स्थान सर्वोपरि है। यह सनातन धर्म-संस्कृति की आधारशिला है। धर्म, योग और अध्यात्म तत्त्व के ज्ञान का एकमात्र प्रामाणित स्रोत वेद ही हैं। हिंदू धर्म के मूल तत्त्वों, सिद्धांतों व स्वरूप का उद्गमस्थल भी वेद ही हैं— **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।'**

आधुनिक विज्ञान व वैज्ञानिक प्रणालियों की दृष्टि से भी वैदिक ज्ञान-विज्ञान का अत्यंत महत्त्व है। भौतिकी, रसायन, चिकित्सा, गणित, जंतुविज्ञान, ब्रह्मांड विज्ञान जैसे विज्ञान के सभी प्रमुख क्षेत्रों के गुह्य एवं मार्मिक सूत्र व सिद्धांत के अन्वेषण एवं प्रकाशन से समूचा विश्वसमुदाय समय-समय पर विस्मित, चमत्कृत हो ऋषि प्रज्ञा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता आया है।

सच्चे अर्थों में संपूर्ण मानव जाति को वैदिक ज्ञान के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए; क्योंकि ये ही एकमात्र ऐसे शास्त्र हैं, जिनका उद्‌देश्य विश्व-वसुधा का परम कल्याण और अखिल विश्व में मौजूद मानव जाति के सांसारिक व आध्यात्मिक जीवन के चरम विकास का उपदेश बिना किसी भेदभाव के देना है।

यह ज्ञान आदिकाल से अद्यतन मानव मात्र की अंतः-बाह्य सभी चुनौतियों का समाधान करने में सक्षम रहा है और सतत एक आदर्श जीवन की प्रेरणा, प्रकाश और पथ-प्रदर्शक बन हमारे बीच विद्यमान है। आवश्यकता है इसके महत्त्व, प्रभाव व उपादेयी विचारों से जनसामान्य को परिचित कराया जाए।

वेदों के संबंध में उत्पन्न भ्रांतियों को दूर कर इनके गुह्य ज्ञान को सरल-सहज रूप में प्रस्तुत कर परमपूज्य गुरुदेव ने हम सभी के लिए इस ऋषिज्ञान की सर्वोच्च धरोहर को अत्यंत उपयोगी बनाकर अनुदान रूप में सौंप दिया है। इस अनुदान को अपनों में बाँटने की जिम्मेदारी भी हम सभी की है। हम और हमारे सब इस ज्ञान-विरासत से लाभान्वित हो उठें, ऐसी प्रार्थना है। ❑

जय और विजय विधाता के सबसे निकटवर्ती पार्षद थे। एक बार विधाता ने उन दोनों को धरती पर भेजा और उनको आदेश दिया कि वे यह पता लगाकर आएँ कि धरती पर स्वर्ग का सच्चा अधिकारी कौन है? जय और विजय धरती पर उतरकर आए और वेश बदलकर उन्होंने संपूर्ण पृथ्वी का परिभ्रमण किया।

उन्होंने देखा कि लोग स्वर्गप्राप्ति के लिए भाँति-भाँति के कर्मकांडों में लीन हैं। एक दिन वे भ्रमण करते हुए एक गाँव में पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि रात्रि के समय एक अंधा व्यक्ति अपने समीप एक दीपक रखकर बैठा है। जय-विजय उसके पास पहुँचकर उससे बोले—''क्यों बाबा? तुम्हें तो दिखाई नहीं पड़ता, फिर यह दीपक किसके लिए जलाया हुआ है?''

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया—''श्रीमान! मैं भले से ही न देख पाता हूँ, पर जो देख पाते हैं, वे तो इसके प्रकाश से सही मार्ग का अनुसरण कर सकते हैं।'' जय-विजय ने पुनः पूछा—''क्या तुम कोई उपासना नहीं करते? तुम्हें स्वर्ग नहीं जाना?''

वृद्ध ने उत्तर दिया—''उपासना क्या होती है, स्वर्ग किसे कहते हैं, मुझे नहीं मालूम। मैं तो मात्र भटके हुए राहगीरों को राह दिखाने का कार्य करता हूँ। इसके अतिरिक्त और किसी पूजा-उपासना से मैं परिचित नहीं हूँ।'' जय-विजय ने लौटकर विधाता को सारा विवरण सुनाया। सब सुनकर विधाता बोले—''अन्य कोई हो या न हो, परंतु यह दृष्टिहीन व्यक्ति निश्चित रूप से स्वर्ग का अधिकारी है। ईश्वर का नाम लेने की अपेक्षा, उसकी व्यवस्था में हाथ बँटाने का पुण्य ज्यादा है।''

पुनर्जन्म

पुनर्जन्म से जुड़े किस्से-कहानियाँ हमें अक्सर सुनने व पढ़ने को मिलते हैं। कई बार हमारे आस-पास भी ऐसी घटनाएँ घटती हैं, जिन पर हमें विश्वास नहीं होता। हमें भले ही विश्वास हो या न हो, पर यह सत्य है कि शरीर की मृत्यु के पश्चात भी जीवात्मा का अस्तित्व बना रहता है और मृत्यु के उपरांत जीवात्मा पुनः नूतन शरीर प्राप्त कर नया जीवन धारण करती है अर्थात जीवात्मा पुनः जन्म लेती है।

नया जीवन या नया शरीर धारण करने के बाद कभी-कभी किसी व्यक्ति को अपने पूर्वजन्म की घटनाएँ याद आने लगती हैं और उन घटनाओं को सुनकर हम आश्चर्य से भर उठते हैं। पुनर्जन्म की एक ऐसी ही रोचक व आश्चर्यजनक घटना उत्तर प्रदेश के एक गाँव की है।

दरअसल उस छोटे से गाँव में जन्मे अनिकेत की बातें उसके माता-पिता ही नहीं, बल्कि दूसरों को भी यह मानने को मजबूर करती हैं कि अनिकेत का पुनर्जन्म हुआ था। वर्षों पूर्व उत्तर प्रदेश के उस छोटे-से गाँव में जन्मे अनिकेत को बचपन से ही हनुमान जी के प्रति विशेष अनुराग था।

एक बार जब उसके पिताजी बाजार से हनुमान जी का चित्र लेकर आए थे तब उस चित्र को देखकर अनिकेत बहुत प्रसन्न हुआ। तब अनिकेत मात्र छह वर्ष का था। उस चित्र को देखते ही अनिकेत के मुख से हनुमान जी से संबंधित कई मंत्र प्रस्फुटित होने लगे। वह हनुमान जी के चित्र को सामने रखकर बिना चालीसा देखे ही हनुमान चालीसा, बजरंग बाण व हनुमान जी की आरती आदि पाठ करने लगा।

यह देखकर उसके माता-पिता भी आश्चर्यचकित थे। अनिकेत को उन्होंने कभी हनुमान चालीसा पढ़ना नहीं सिखाया, उसे लेकर कभी हनुमान मंदिर भी नहीं गए व न ही उसे हनुमान जी का कभी चित्र दिखाया। फिर भी पहली बार में ही हनुमान जी का चित्र देखकर उन्हें पहचान लेना और उनकी स्तुति करना, यह सब अनिकेत के माता-पिता के लिए किसी अबूझ पहेली से कम न था। समय के साथ धीरे-धीरे अनिकेत को अपने पिछले जन्म की घटनाएँ एक-एक करके याद आने लगीं।

अब अनिकेत 10 वर्ष का हो चुका था। अचानक उसने अपने माता-पिता को जो कहानी सुनाई, उसे सुनकर उसके माता-पिता ही नहीं, उसके आस-पास के लोग भी हैरान रह गए। अनिकेत अचानक अपना नाम अमोल बताने लगा और अपना घर फैजाबाद के एक छोटे-से गाँव में बताने लगा और साथ ही वह वहाँ जाने की जिद भी करने लगा।

उसने बताया—"मेरा घर फैजाबाद के पास एक गाँव में था। मेरे पिता किसान थे और हनुमान जी के परम भक्त थे। वे अक्सर अयोध्या के हनुमानगढ़ी मंदिर जाया करते थे। वहाँ से हनुमान जी का चित्र लाकर वे घर में हनुमान जी की नित्य उपासना किया करते थे। पिताजी के साथ मैं भी हनुमान चालीसा का पाठ किया करता था। तभी से मुझे हनुमान जी से विशेष प्रेम है।

"एक दिन अचानक रामनवमी के दिन हृदयाघात के कारण पिताजी चल बसे। पिताजी

की मृत्यु के बाद माताजी भी चल बसीं। हम दो भाई और एक बहन थे। बड़े भाई की शादी हो गई थी। भाई का व्यवहार तो ठीक था, पर भाभी बड़ी क्रूर थीं। मुझे बहुत परेशान किया करती थीं।

"मैं 22 वर्ष का था और तभी मैं भाभी के व्यवहार से तंग आकर अयोध्या के एक आश्रम में रहने लगा। वहाँ रहते हुए मैं रोज हनुमानगढ़ी मंदिर जाकर हनुमान जी का दर्शन किया करता था। 35 वर्ष की अवस्था में मैं पुनः गाँव लौट आया, पर दो वर्षों के बाद ही मेरी मृत्यु हो गई।"

यह कहानी सुनकर एवं अनिकेत की जिद को देखते हुए उसके माता-पिता उसे फैजाबाद के उस गाँव में लेकर गए, जिसे वह अपना गाँव बताता था। वहाँ पहुँचते ही वह अपने घर को पहचान गया। वहाँ पता चला कि उसके भैया-भाभी की मृत्यु हो चुकी है और उनके बच्चे वहाँ रह रहे हैं। उसने अपने गाँव के दोस्तों, गाँव के मंदिर, तालाब, स्कूल, स्कूल के शिक्षक सबके बारे में बताया, जिसे सुनकर गाँव के लोग हतप्रभ थे। उसकी बातें सुनकर गाँव के लोगों को विश्वास हो गया कि वास्तव में यह पूर्वजन्म का अमोल ही है।

उस गाँव के बारे में, उसके घर के बारे में, उसके माता-पिता के बारे में गाँव के लोगों ने उससे कई प्रश्न किए और उसने जो बातें बताईं, वे अक्षरशः सत्य थीं; जिन्हें सुनकर गाँव के लोग आश्चर्यचकित थे। उस गाँव के बाद वह अयोध्या के उस आश्रम में गया जहाँ वह कुछ वर्षों तक रहा था। वह उस आश्रम के साधु-संतों व संचालक को देखते ही पहचान गया। आश्रम के लोग भी अमोल के बारे में उसके द्वारा बताई गई बातों को अक्षरशः सत्य बता रहे थे।

अंत में अनिकेत अयोध्या के हनुमानगढ़ी जाकर हनुमान जी का दर्शन करते ही भावविभोर हो गया। वह खुशी के मारे नाचने लगा। उसने हनुमान जी की पूजा-अर्चना की और फिर अयोध्या के एक संत से हनुमान मंत्र की दीक्षा ली। उसके माता-पिता भी दीक्षित हुए।

वे सभी वापस अपने घर आ गए और अब पूरा परिवार हनुमान जी की विधिवत् नियमित पूजा-उपासना करने लगा। हनुमान जी की पूजा-उपासना से अनिकेत का मन शांत होने लगा। उसके माता-पिता भी हनुमान जी की उपासना के प्रभाव से आनंदित रहने लगे। उनके घर में सुख-शांति एवं समृद्धि छाने लगी। पुनर्जन्म की यह घटना आश्चर्यजनक, परंतु सत्य है। ❑

संत जब विदेश की यात्रा पर निकले, तो उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा—"तुम्हारे लिए भोजन का कितना सामान रख जाऊँ?" पत्नी बोली—"उतना सामान, जितनी कि मेरी उम्र हो।" संत बोले—"मैं नहीं जानता कि तुम्हारी उम्र कितनी है, वो तो ईश्वर ही जानता होगा।" पत्नी बोली—"तो फिर मेरे भोजन की फिक्र भी उन्हें ही करने दीजिए, जिन्होंने ये दुनिया बनाई है। जो आपको देते हैं, वे ही मेरा भी बंदोबस्त करेंगे।" संत अपनी पत्नी के ईश्वरविश्वास से अत्यंत प्रभावित हुए व निश्चिंत होकर यात्रा पर निकल पड़े। सच्चे भक्त सदैव आत्मनिर्भर होते हैं।

कैसी हो भगवद्भक्ति ?

देवर्षि नारद भगवान श्रीहरि के परम भक्त थे। वे वीणा बजाते हुए अक्सर 'नारायण! नारायण! नारायण!' गाया करते थे। वे भगवान श्रीहरि के पास कभी भी बे-रोक-टोक आ-जा सकते थे। एक बार देवर्षि नारद के मन में यह विचार आया कि वे ही भगवान श्रीहरि विष्णु के सबसे बड़े भक्त हैं; क्योंकि वे भगवान के ही नाम का उच्चारण व गान किया करते हैं। फिर इस संसार में उनसे बड़ा भक्त शायद ही कोई दूसरा हो सकता है?

यह विचार कर देवर्षि नारद भगवान विष्णु से मिलने क्षीरसागर पहुँचे। उन्होंने भगवान श्रीहरि को प्रणाम किया। भगवान विष्णु बोले—''आपका यहाँ आना कैसे हुआ देवर्षि?'' देवर्षि नारद बोले—''भगवान! मेरे मन में एक विचार आया है, एक प्रश्न आया है, जिसका समाधान मैं आपसे चाहता हूँ।'' भगवान बोले—''हाँ! क्यों नहीं? आपका प्रश्न क्या है देवर्षि?''

तब देवर्षि नारद कहने लगे—''हे भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस संसार में आपका सबसे बड़ा भक्त कौन है?'' सर्वज्ञ भगवान विष्णु देवर्षि नारद के यह प्रश्न पूछने का प्रयोजन समझ गए।

वे यह जान गए कि देवर्षि नारद को अपनी भगवद्भक्ति का अभिमान हो गया है। अस्तु उनके मन से इस अभिमान को निकाल बाहर करना आवश्यक है; क्योंकि अभिमान भगवद्भक्ति के मार्ग में एक बहुत बड़ी बाधा है।

भगवान यह भली भाँति जानते थे कि देवर्षि नारद उनके परम भक्त हैं। उनकी भक्ति के कारण ही देवर्षि नारद भगवान को बहुत प्रिय थे। अस्तु अपने भक्त के कल्याणार्थ भगवान ने उनके अभिमान को दूर करने का एक उपाय सोचा और बोले—''देवर्षि नारद, आपके प्रश्न के समाधान के लिए आपको मेरे साथ मृत्युलोक चलना होगा।''

देवर्षि नारद बोले—''ठीक है भगवन्! मैं मृत्युलोक चलने को तैयार हूँ।'' भगवान विष्णु देवर्षि नारद को लेकर मृत्युलोक चल पड़े। धरती पर पहुँचकर दोनों ने किसान का वेश धारण कर लिया और एक गाँव के किनारे बनी एक झोंपड़ी की ओर चल पड़े। भगवान बोले—''देवर्षि! मेरा एक बहुत बड़ा भक्त यहीं इस कुटिया में रहता है।'' दोनों उस कुटिया की ओर बढ़ चले।

उन्होंने देखा कि एक किसान कुटिया के बाहर एक खूँटे में अपनी गाय को बाँध रहा है और उसके मुख से 'हरि-हरि गोविंद' का स्वर भी निकल रहा है। किसान वेशधारी भगवान विष्णु ने उसके निकट जाकर नारायण! नारायण! कहा तो उस किसान ने विनीत स्वर में पूछा—''मान्यवर! आप कहाँ से आए हैं? मेरे लिए कोई सेवा हो तो निस्संकोच बताइए।''

भगवान बोले—''हम नगर जा रहे हैं, पर अब अँधेरा घिरने लगा है। वन में जंगली पशुओं का डर है। इसलिए आपके यहाँ रात भर का आश्रय चाहते हैं।'' यह सुनते ही उस किसान का चेहरा खुशियों से खिल उठा। मानो उसे कोई अनमोल वस्तु मिल गई हो।

वह बोला—''भद्रजन! यह तो मेरा अहोभाग्य है कि आप मेरा आतिथ्य स्वीकार करेंगे। यह तो भगवान की बड़ी कृपा है कि उन्होंने मुझे आप जैसे भद्रजन की सेवा का सौभाग्य प्रदान किया है। आप

दोनों मेरी कुटिया में चलिए और जो भी रूखा-सूखा मेरे घर में है, उसे स्वीकार करने की कृपा कीजिए।'' किसान उन दोनों को कुटिया के बाहर एक चारपाई पर बिठाकर कुटिया के अंदर गया और अपनी पत्नी से कहा—''देवी! अपने घर दो अतिथि आए हैं।'' किसान की पत्नी उस समय अपने बच्चों को भोजन परोसने जा रही थी। वह धीरे से आटे का बरतन दिखाते हुए बोली—''घर में बस, यही थोड़ा-सा आटा बचा है। बच्चे भी भोजन माँग रहे हैं।''

किसान बोला—''अभी बच्चों को भोजन मत परोसो। पहले अतिथि भरपेट खा लें तो फिर बच्चों को देखेंगे।'' उधर भगवान विष्णु और देवर्षि नारद दोनों किसान और उसकी पत्नी का सारा वार्त्तालाप सुन रहे थे। फिर भी परीक्षा लेने के लिए दोनों भोजन के लिए बैठ गए। दोनों ने भरपेट भोजन किया, पर देवर्षि नारद सोचने लगे कि यह सीधा-सादा गृहस्थ भगवान का सबसे बड़ा भक्त भला कैसे हो सकता है?

उधर श्रीहरि ने किसान से और भोजन लाने की फरमाइश कर दी। वे बोले—''मेरा पेट अभी नहीं भरा। क्या और भोजन मिलेगा?'' किसान रसोई में गया और जाकर पत्नी से पूछा—''कुछ और भोजन बचा है क्या?'' पत्नी बोली—''अब तो भोजन और आटा भी समाप्त हो चुका है। बच्चों के लिए भी रोटियाँ या आटा नहीं बचा है। हम दोनों ने भी अभी भोजन नहीं किया, पर हाँ! बच्चों के लिए मैंने कांजी बनाई है, बस, वही शेष है।''

किसान ने कहा—''चलो उन्हें कांजी ही पीने को देते हैं, जिससे वे दोनों तृप्त हो सकें।'' किसान ने उन दोनों को कांजी पीने को दी। कांजी पीकर दोनों तृप्त हुए। उस किसान के दिव्य भाव को देखकर दोनों आह्लादित हुए। उस रात किसान और उसके परिवार को भूखे ही सोना पड़ा। उधर भूखे बच्चे माँ का आँचल थामकर कह उठे—''माँ! नींद नहीं आ रही। हमें जोर की भूख लगी है। पिताजी ने उन अतिथियों को कांजी भी क्यों पिला दी?''

किसान ने बच्चों के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—''पुत्र! अतिथि को भोजन कराना स्वयं भगवान श्रीहरि विष्णु को भोग लगाने के समान है। हमारे घर अतिथि आए हैं, यह तो हमारे लिए बड़े सौभाग्य की बात है।'' कुटिया से बाहर चारपाई पर विश्राम कर रहे श्रीहरि और देवर्षि नारद, यह सारा वार्त्तालाप सुन रहे थे।

तब भगवान श्रीहरि बोले—''आपने सुना देवर्षि! किसान और उसके परिवार को भोजन नहीं मिला, पर फिर भी वह मेरे गुण गा रहा है।'' इस पर देवर्षि नारद बोले—''भगवन्! यह तो कुछ भी नहीं। मैंने तो कई-कई दिनों तक भूखे रहकर आपका स्मरण किया है, ध्यान किया है, भजन किया है, गुणगान किया है।'' सुबह हुई और उन दोनों ने देखा कि किसान भगवान विष्णु की मूर्ति के सामने 'हरि-हरि गोविंद' गा रहा है। वह कह रहा था—''हे प्रभु! तुम सदा मेरे मन में बसे रहो। बस मुझे और कुछ नहीं चाहिए।''

भगवन्नाम स्मरण कर वह किसान कुटिया के बाहर चारपाई पर बैठे भगवान विष्णु और देवर्षि नारद जी के पास आया और बोला—''हरि की बड़ी कृपा है। वही जग का रखवाला है। प्रभु की कृपा से रात को आप दोनों को कोई कष्ट तो नहीं हुआ? जब तक आपका जी चाहे आप दोनों यहाँ रहें। अभी मैं खेत पर जा रहा हूँ।''

भगवान बोले—''यदि तुम्हें आपत्ति न हो तो हम भी तुम्हारे साथ चलेंगे।'' देवर्षि नारद और भगवान विष्णु किसान के उस खेत पर उसके साथ गए। किसान बोला—''यही है अपना खेत। अब मैं अपना काम करूँगा।'' वह किसान खेत में काम करता जाता था और हरि-हरि गोविंद गाता जाता

था। ऐसा लगता था मानो वह खेत में काम भी भगवान की पूजा के साथ से कर रहा हो। जब शाम हुई तो वह घर चलने को तैयार हुआ।

देवर्षि नारद बोले—"तुम तो सत्पुरुष जान पड़ते हो। भगवान के बड़े भक्त लगते हो। हर घड़ी भगवान का ही नाम लेते हो। खेत में काम करते हुए भी हरिनाम का गान करते हो।"

तब वह किसान बोला—"मेरे पास भला भक्ति के लिए समय कहाँ? मैं तो बस, यह मानता हूँ कि जो भगवान पूरे जगत् के मालिक हैं, वे ही हमारे खेत के भी मालिक हैं। मैं खेत में काम करते हुए यह महसूस करता हूँ कि यह खेत भी भगवान का है। मैं भगवान के खेत में भगवान के लिए ही काम कर रहा हूँ।"

फिर वह बोला—"मुझे भगवान की विधि-विधानपूर्वक पूजा-भक्ति के लिए भला समय ही कहाँ मिलता है?" तब देवर्षि नारद ने पूछा—"फिर तुम्हें भगवान का नाम लेने का समय कब-कब मिलता है?" किसान बोला—"सुबह उठता हूँ तब, रात को सोता हूँ तब और दिन में काम करते हुए भगवान का स्मरणभर कर लेता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं भगवान का स्मरण या पूजा-भक्ति भला कहाँ कर पाता हूँ?"

तब श्रीहरि विष्णु देवर्षि नारद से बोले—"देवर्षि अभी आप किसान की भक्ति के विषय में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व एक काम करें।" भगवान ने एक कलश को तेल से लबालब भरकर देवर्षि नारद को दिया और बोले—"देवर्षि आप इसे अपने सिर पर रखकर बिना हाथ लगाए सामने वाली पहाड़ी तक ले चलें, पर ध्यान रहे, इस कलश में रखे तेल की एक बूँद भी जमीन पर गिरने न पाए।"

देवर्षि नारद बोले—"यह कार्य सहज तो नहीं है, पर आपकी कृपा हो तो कुछ भी असंभव नहीं।" यह कहकर देवर्षि नारद ने कलश सिर पर रखा और पहाड़ी की ओर चल दिए। देवर्षि नारद पहाड़ी तक गए और लौट आए। भगवान बोले—"लौट आए देवर्षि! ठीक है अब आप यह बताएँ कि इतनी दूर जाने और आने में आपने कितनी बार मेरा स्मरण किया?"

देवर्षि नारद बोले—"एक बार भी नहीं भगवन्! करता भी कैसे? मेरा सारा ध्यान तो तेल और कलश की तरफ लगा हुआ था। मेरा सारा ध्यान तो इस बात पर था कि कलश से एक बूँद तेल भी नहीं टपकना चाहिए।" तब श्रीहरि बोले—"तब आप स्वयं सोचें नारद! वह किसान दिन भर कठिन श्रम करता है, फिर भी दो-चार बार मेरा स्मरण जरूर करता है। यही नहीं, वह जो कुछ करता है, उसे मेरा ही कार्य समझकर करता है। इस तरह देखें तो वह कभी मेरा विस्मरण करता ही नहीं। अब आप ही बताएँ देवर्षि! उस किसान को कैसा भक्त मानना चाहिए।'

श्रीहरि भगवान विष्णु की बातें सुनकर और किसान की भगवद्भक्ति को देखकर देवर्षि नारद के अंतःचक्षु खुल गए। वे श्रीहरि के चरणों में नतमस्तक हो गए और बोले—"प्रभु! आपने आज पूरी तरह मेरी शंका का समाधान कर दिया। मैं आज यह मान गया कि संसार के झंझटों, संकटों, संघर्षों के बीच रहकर भी जो आपका स्मरण करते हैं, वे ही सबसे बड़े भक्त हैं।" फिर भगवान विष्णु और देवर्षि नारद वहाँ से अंतर्धान हो गए। ❑

आराधना का अर्थ है—विराट ब्रह्म की, विशाल विश्व की, विश्वमानव की सेवा-साधना में समुचित उत्साह और तत्परता रखना। इसी परमार्थपरायणता को ईश्वर की आराधना कहते हैं।

—परमपूज्य गुरुदेव

अज्ञान से मुक्ति ही मोक्ष है

भारतीय संस्कृति में मोक्षप्राप्ति को जीवन का परम लक्ष्य माना गया है। मोक्ष को ही विभिन्न दर्शनों व शास्त्रों में कैवल्य, अपवर्ग, मुक्ति, निर्वाण, स्वरूपस्थिति, स्थितप्रज्ञता, स्वोपलब्धि, परमपद व निःश्रेयस् आदि कहा गया है। 'मोक्ष' आखिर है क्या ? मोक्ष का अभिप्राय क्या है ? मोक्ष को जीवन का परम लक्ष्य क्यों कहा गया है ?

वस्तुतः 'मोक्ष' का आशय 'मुक्ति' से है, पर प्रश्न यह उठता है कि किसकी मुक्ति और किससे मुक्ति ? और मुक्ति क्यों और कैसे ? दरअसल 'मुक्ति' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'मुच' धातु से हुई है। 'मुच' धातु का प्रयोग छूटने के अर्थ में किया जाता है।

इस प्रकार मोक्ष अथवा मुक्ति का आशय छूटने से है। जीव का जन्म और मरण के बंधन से छूट जाना ही मोक्ष है। मोह का क्षय होना या छूट जाना ही मोक्ष है। यहाँ पर मुक्ति (मोक्ष) का अर्थ जीवात्मा का समस्त दुःखों तथा बंधनों से छूटकर अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित होने से किया गया है। अस्तु मोक्ष वह विशेष अवस्था है जिसमें जीवात्मा सभी प्रकार के दुःखों, क्लेशों तथा बंधनों से छूटकर अपने शुद्ध स्वरूप, वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाती है।

जीवात्मा के इसी वास्तविक स्वरूप में स्थिति को ऋषिवर पतंजलि ने योगसूत्र 1.3 में कहा है—

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।

अर्थात जब चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाता है, उस समय द्रष्टा (आत्मा) की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है अर्थात वह मोक्ष, मुक्ति अथवा कैवल्य-अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

इस अवस्था में जीव आत्मा से ही प्रेम करता है, आत्मा से ही खेलता है, आत्मक्रीड़ा करता है, आत्मा में ही आसक्त रहता है और आत्मा में ही परमानंद को प्राप्त करता है।

उपनिषदों के अनुसार अविद्या (अज्ञान) ही बंधन का कारण है। अविद्या (अज्ञान) के कारण ही अहंकार उत्पन्न होता है और यह अहंकार ही जीव को बंधनग्रस्त कर देता है।

बंधन की अवस्था में जीव को ब्रह्म, आत्मा व जगत् के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं रहता फलस्वरूप जीव इंद्रियों, मन, बुद्धि अथवा शरीर से तादात्म्य करने लगता है। आत्मा—शरीर, इंद्रिय और मन से भिन्न है, परंतु अज्ञान के कारण जीवात्मा स्वयं को शरीर, इंद्रिय व मन से भिन्न नहीं समझती। इसके विपरीत वह शरीर, इंद्रिय और मन को अपना अंग समझने लगती है। इन विषयों के साथ वह तादात्म्यता हासिल कर लेती है। इसे ही बंधन कहते हैं। बंधन को उपनिषद् में 'ग्रंथि' भी कहा गया है। ग्रंथि का अर्थ है—बँध जाना।

मुंडक उपनिषद् में अविद्या को ग्रंथि कहा गया है, जिसे खोलने पर ही आत्मा का दर्शन संभव है। बंधन की अवस्था में मानव मन में गलत धारणाएँ बनने लगती हैं। इसलिए बंधनग्रस्त, अज्ञानग्रस्त, अविद्याग्रस्त व्यक्ति अनात्मतत्त्व को आत्मा समझने लगता है। क्षणिक वस्तु को स्थायी समझने लगता है। अवास्तविक को वास्तविक समझने लगता है। दुःख को सुख समझने लगता है। अप्रिय वस्तु को प्रिय समझने लगता है और उसके अनुरूप कर्म करने लगता है और दुःखों की दलदल में धँसता जाता है।

जैसे नीले रंग का चश्मा पहने हुए व्यक्ति को सारा संसार नीला दिखाई पड़ने लगता है, वैसे ही बंधनग्रस्त, अज्ञानग्रस्त व्यक्ति को दुःख, सुख प्रतीत होता है, अर्थात अवास्तविक ही वास्तविक प्रतीत होता है पर जब वह नीले रंग का चश्मा उतार लेता है और किसी पारदर्शी चश्मे से इस दुनिया को देखता है तो उसे यह दुनिया अपने वास्तविक रूप में दिखाई पड़ने लगती है।

बंधन की अवस्था में आत्मा को सांसारिक दुःखों के अधीन रहना पड़ता है। बंधन की अवस्था में जीवात्मा को निरंतर जन्म ग्रहण करना पड़ता है। इस प्रकार जीवन के दुःखों को सहना तथा बार-बार जन्म ग्रहण करना ही बंधन है और इस बंधन का अंत ही मोक्ष है। इस बंधन से मुक्त हो जाना ही मुक्ति है। मोक्ष दुःख के पूर्ण निरोध की अवस्था है। मोक्ष को अपवर्ग भी कहा गया है। अपवर्ग का अर्थ ही है शरीर और इंद्रियों के बंधन से आत्मा का मुक्त हो जाना।

मोक्ष की अवस्था में जीव अपने यथार्थस्वरूप को पहचान लेता है तथा ब्रह्म के साथ उसकी तादात्म्यता हो जाती है। इस प्रकार मोक्ष अथवा मुक्ति ब्रह्मात्मैक्य बोध है अर्थात ब्रह्म और आत्मा की एकता का, अभिन्नता का ज्ञान अथवा बोध ही मोक्ष है, मुक्ति है, कैवल्य है, निर्वाण है, स्वरूपस्थिति है, स्वोपलब्धि है।

ब्रह्म और आत्मा के अभेद का ज्ञान ही भवबंधन से मुक्त होने का कारण है, जिसके द्वारा जीवात्मा अद्वितीय, आनंदस्वरूप, ब्रह्मपद, परमपद को प्राप्त कर लेता है। ब्रह्म और आत्मा की अभिन्नता का बोध हो जाने पर जीवात्मा को फिर जन्म-मरण रूपी संसार चक्र में नहीं पड़ना पड़ता और वह सभी प्रकार के सांसारिक दुःखों व क्लेशों से मुक्त हो जाता है।

मोक्ष में जिस आनंद की प्राप्ति होती है, वह सांसारिक सुख और दुःख से परे है। मोक्ष की अवस्था में जीव का ब्रह्म से एकाकार हो जाता है, तब उसे परमानंद की अनुभूति होती है। उपनिषद् में मोक्ष को आनंदमय अवस्था कहा गया है। चूँकि ब्रह्म आनंदमय है, इसलिए मोक्षावस्था भी आनंदमय है। मोक्ष परमानंद की अवस्था है।

कठोपनिषद् एवं बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि जिस समय संपूर्ण कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं, उस समय जीव इसी शरीर में ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। वह संसार में रहता है पर संसार उसमें नहीं रहता। वह कर्म-नियम की अधीनता से मुक्त हो जाता है। जिस प्रकार जल कमल के पत्तों पर नहीं ठहर पाता, उसी प्रकार कर्म जीवनमुक्त पर नहीं चिपकते। प्रारब्ध कर्मों के क्षय हो जाने पर जीवनमुक्त, विदेह हो जाता है।

मोक्ष की प्राप्ति के बाद भी मनुष्य का शरीर रहता है। मोक्ष का अर्थ शरीर का अंत नहीं है। शरीर तो प्रारब्ध कर्मों का फल है। जब तक इनका फल समाप्त नहीं हो जाता, तब तक शरीर विद्यमान रहता है। जिस प्रकार कुम्हार का चाक, कुम्हार के द्वारा घुमाना बंद कर देने के बाद भी कुछ काल तक चलता रहता है, उसी प्रकार मोक्ष प्राप्त कर लेने के बाद पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार शरीर कुछ काल तक जीवित रहता है। इसे जीवनमुक्ति कहा जाता है।

जीवनमुक्त व्यक्ति संसार में रहता है, पर संसार उसमें नहीं रहता। संसार के दोष, प्रपंच, विकार उसमें नहीं रहते। वह उनसे अप्रभावित ही रहता है। वह संसार के कर्मों में भाग लेता है, पर फिर भी वह कर्मबंधन में नहीं बँधता; क्योंकि उसके हर कर्म ही अकर्म होने लगते हैं। उसके हर कर्म संस्कारशून्य होने लगते हैं। इसका कारण यह है कि उसके कर्म अनासक्त भाव से किए जाते हैं।

जो कर्म आसक्त भाव से किए जाते हैं, उनसे कर्म-बंधन उत्पन्न होते हैं, कर्म संस्कार उत्पन्न

होते हैं, परंतु निष्काम कर्म या अनासक्त कर्म भुने हुए बीज की तरह हैं, जिनसे कोई नया अंकुर नहीं निकलता। जब जीवनमुक्त व्यक्ति के स्थूल और सूक्ष्मशरीर का अंत हो जाता है, तब उसे 'विदेह मुक्ति' की प्राप्ति होती है। विदेह मुक्ति मृत्यु के उपरांत ही उपलब्ध होती है।

आचार्य शंकर का मत है कि आत्मा का शरीर और मन में अपनेपन का संबंध होना बंधन है। आत्मा का शरीर के साथ आसक्त हो जाना ही बंधन है। आत्मा शरीर से भिन्न है, फिर भी वह शरीर की अनुभूतियों को निजी अनुभूतियाँ समझने लगती है। यही बंधन है। आत्मा स्वभावतः नित्य, शुद्ध, चैतन्य, मुक्त और अविनाशी है, परंतु अज्ञान के वशीभूत होकर वह बंधनग्रस्त हो जाती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि बंधनग्रस्त जीवात्मा बंधनमुक्त होगी कैसे? क्या है बंधन से मुक्ति का मार्ग? क्या है मोक्षप्राप्ति का मार्ग? अद्वैत वेदांत के प्रवर्तक आचार्य शंकर के अनुसार आत्मा का अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित हो जाना ही मोक्ष है। आत्मा का वास्तविक स्वरूप ब्रह्मभाव है, पर अज्ञान (अविद्या) के कारण जीवात्मा अपने ब्रह्मभाव, अपने ब्रह्मस्वरूप को भूलकर दुःख भोगती है। इसलिए अज्ञान से मुक्ति ही मोक्ष है। अपने ब्रह्मस्वरूप में आत्मा सभी प्रकार के दुःखों व बंधनों से मुक्त होती है।

आचार्य शंकर का मत है कि जब तक जीवात्मा में विद्या (ज्ञान) का उदय नहीं होगा, तब तक वह संसार में दुःखों का सामना करती रहेगी। वह जन्म-मरण के चक्र में पड़ी दुःख भोगती रहेगी। अस्तु बिना ज्ञान के मुक्ति संभव नहीं, मोक्ष संभव नहीं। आत्मज्ञान (ब्रह्मज्ञान) ही है, अज्ञानरूपी (अविद्या) बंधन से मुक्ति का मार्ग। अविद्या का अंत विद्या से ही संभव है। अज्ञान का अंत ज्ञान से ही संभव है। अविद्या केवल विद्या से ही दूर हो सकती है। अज्ञान सिर्फ ज्ञान से ही मिट सकता है। आत्मा के वास्तविक स्वरूप (ब्रह्मस्वरूप) का ज्ञान ही मोक्ष है। आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता का बोध ही मोक्ष है।

मोक्ष की प्राप्ति से संसार में कोई परिवर्तन नहीं होता, पर जीवात्मा का जगत् के प्रति, संसार के प्रति जो दृष्टिकोण है वह परिवर्तित हो जाता है। ब्रह्मभाव, ब्रह्मस्वरूप में अवस्थित हो जाने पर जीवात्मा का जगत् के प्रति दृष्टिकोण बदल जाता है। जगत् को देखने का उसका नजरिया बदल जाता है; क्योंकि अब वह जगत् को आत्मदृष्टि से देखती है, ब्रह्मदृष्टि से देखती है।

वह जगत् के प्रपंच से परे रहकर, अप्रभावित रहकर जगत् को द्रष्टाभाव से देखती है, ब्रह्मभाव से देखती है और तदनुरूप लोकव्यवहार करती है। हर स्थिति, परिस्थिति में समभाव, समत्व की स्थिति में रहती हुई सुख और दुःख से परे सदा आनंद में रहती है।

मोक्ष की अवस्था में जीवात्मा को अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। अस्तु मोक्ष किसी नई वस्तु की प्राप्ति नहीं है, बल्कि जो पहले से है उसी की पुनर्प्राप्ति है। इसलिए आचार्य शंकर ने मोक्ष को 'प्राप्तस्व प्राप्ति' कहा है। मोक्षप्राप्ति का अर्थ किसी नई वस्तु की प्राप्ति नहीं है, बल्कि जो वस्तु पहले से ही है और जिसे अज्ञान के कारण जीवात्मा कुछ समय के लिए भूल गई है, उसे ही फिर से प्राप्त कर लेना है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में इस प्रसंग की व्याख्या के लिए एक राजकुमार का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है, जिसका संयोगवश लालन-पालन बचपन से ही एक शिकारी के घर में होता है, पर बाद में वह यह जान लेता है कि वास्तव में वह एक राजकुमार है। उसी प्रकार इस प्रसंग की व्याख्या वेदांत दर्शन में एक उपमा से की जाती है कि जिस प्रकार कोई रमणी अपने गले में लटकते हुए हार

को इधर-उधर ढूँढ़ती है, उसी प्रकार मुक्त आत्मा मोक्ष के लिए प्रयत्नशील रहती है।

अतः मोक्ष किसी नई वस्तु की प्राप्ति नहीं है, बल्कि आत्मा का जो निजस्वरूप है और जिसे आत्मा भूली बैठी है, उसे ही फिर से प्राप्त कर लेना है। इसका अर्थ आत्मा का अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेना है, उसमें स्थित हो जाना है।

आत्मा को फिर अपने निजस्वरूप, वास्तविक स्वरूप का बोध हो कैसे? इस हेतु आचार्य शंकर ने साधकों को 'साधन-चतुष्टय' को अपनाने की सलाह दी है। उनके प्रसिद्ध ग्रंथ विवेकचूड़ामणि (18-30) में वे कहते हैं कि मनस्वियों ने चार साधन बताए हैं, उनको अपनाने से ही जीवात्मा की अपने वास्तविक स्वरूप में स्थिति हो सकती है, उनके बिना नहीं।

'नित्यानित्य-वस्तु-विवेक' यह पहला साधन है। ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है, ऐसा जो निश्चय है यही 'नित्यानित्य-वस्तु-विवेक' कहलाता है। साधक को नित्य और अनित्य वस्तुओं में भेद करने का विवेक होना चाहिए। दूसरा साधन है—लौकिक एवं पारलौकिक सुख-भोग के प्रति वैराग्य होना। देह से लेकर ब्रह्मलोकपर्यंत संपूर्ण अनित्य भोग्य पदार्थों में जो घृणाबुद्धि है, वही वैराग्य है।

तीसरा साधन है—शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान आदि छह संपत्तियाँ। शम का मतलब है—'मन का संयम'। बारंबार दोषदृष्टि करने से विषय-समूह से विरक्त होकर चित्त का अपने लक्ष्य में स्थिर हो जाना ही 'शम' है। 'दम' का तात्पर्य है—'इंद्रियों का नियंत्रण।' कर्मेंद्रिय और ज्ञानेंद्रिय दोनों को उनके विषयों से खींचकर अपने गोलकों में (केंद्र में) स्थित करना 'दम' कहलाता है। वृत्ति (चित्तवृत्ति) का बाह्य विषयों का आश्रय न लेना यही उत्तम 'उपरति' है। चिंता और शोक से रहित होकर बिना कोई प्रतिकार किए सब प्रकार के कष्टों को सहन करना 'तितिक्षा' कहलाता है। शास्त्र और गुरुवाक्यों में निष्ठा होना ही 'श्रद्धा' है।

अपनी बुद्धि को सब प्रकार से 'ब्रह्म' में ही सदा स्थिर रखना, यही समाधान है। चित्त की इच्छापूर्ति का नाम कतई 'समाधान' नहीं है। चित्त को ब्रह्म में लगाए रखना, चित्त को ब्रह्म में स्थिर रखना ही वास्तविक 'समाधान' है। चौथा साधन है—'मुमुक्षुता'। अहंकार से लेकर देहपर्यंत जितने अज्ञान-कल्पित बंधन हैं, उनको अपने वास्तविक स्वरूप के ज्ञान द्वारा त्यागने की इच्छा ही 'मुमुक्षुता' है। साधक का मोक्षप्राप्ति हेतु दृढ़ संकल्पित होना ही मुमुक्षुता है।

जब साधक साधन-चतुष्टय की प्रक्रिया पूरी कर लेता है अर्थात जब वह उपर्युक्त चार साधनों से युक्त हो जाता है तब उसे किसी ऐसे गुरु की शरण प्राप्त करनी चाहिए, जिन्हें ब्रह्मज्ञान की अनुभूति व उपलब्धि हुई हो और उस ब्रह्मज्ञानी गुरु के सहारे उसे श्रवण, मनन और निदिध्यासन की प्रक्रिया पूरी करनी चाहिए। गुरु के उपदेशों को सुनने को 'श्रवण' कहते हैं। शास्त्रों में वर्णित आत्माविषयक उपदेशों को सुनना व स्वाध्याय करना ही श्रवण है। गुरु के उपदेशों पर तार्किक दृष्टि से विचार करने और उसे अपने आचरण में उतारने, जीने को 'मनन' कहते हैं।

साधक को शास्त्रों के आत्मा-विषयक ज्ञान पर विचार करना चाहिए और उस विचार को सुदृढ़ करना चाहिए। यही मनन है। श्रवण व मनन के बाद साधक को निदिध्यासन करना होता है। गुरु द्वारा प्रदत्त इष्टमंत्र का जप व ध्यान ही निदिध्यासन है। आत्मा का निरंतर ध्यान करना ही निदिध्यासन है। आत्मा में निरंतर ब्रह्म का ध्यान करते रहना ही निदिध्यासन है। सत्य पर निरंतर दृष्टि रखना ही निदिध्यासन है। निदिध्यासन वास्तव में ध्यान है।

दुःख के कारण और मोहरूप अनात्म-चिंतन को छोड़कर आनंदस्वरूप आत्मा (ब्रह्म) का चिंतन-ध्यान करना ही निदिध्यासन है। साधकों के लिए ध्यान-विधि पर प्रकाश डालते हुए आचार्य शंकर विवेक चूड़ामणि (379) में कहते हैं कि 'चित्त को अपने लक्ष्य ब्रह्म में दृढ़तापूर्वक स्थिर कर बाह्य इंद्रियों को उनके विषयों से हटाकर अपने-अपने गोलकों में स्थिर करो, शरीर को निश्चल रखो और उसकी स्थिति की ओर ध्यान मत दो। चित्त को ब्रह्म में स्थिर कर ब्रह्म और आत्मा की एकता (अभिन्नता, अद्वैतता) करके तन्मयभाव से अखंड वृत्ति से अहर्निश मन-ही-मन आनंदपूर्वक ब्रह्मानंद रस का पान करो।

वहीं श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है कि वे एक ही परब्रह्म, परमेश्वर समस्त प्राणियों की हृदयरूपी गुफा में छिपे हुए हैं। वे सर्वव्यापी और समस्त प्राणियों के अंतर्यामी परमात्मा हैं। वे सर्वसाक्षी, सर्वज्ञ, परमचेतनस्वरूप, सर्वथा निर्लेप और प्रकृति के गुणों से अतीत हैं। उन हृदयस्थित परब्रह्म परमेश्वर को जो धीरपुरुष नित्य-निरंतर अपनी आत्मा में देखते रहते हैं, उनका ध्यान करते रहते हैं, निरंतर उन्हीं में तन्मय हुए रहते हैं, उन्हीं को सदा रहने वाला परमानंद प्राप्त होता है।

अस्तु अपने हृदय गुफा में स्थित आत्मा का एवं आत्मा में निरंतर परमात्मा का ध्यान करना ही निदिध्यासन है। इस प्रकार साधन चतुष्टय के निरंतर अभ्यास से उत्पन्न प्रभाव से साधक आत्मा को शरीर, मन व बुद्धि से भिन्न समझने लगता है।

अंततः आत्मा पर चढ़े अविद्या, अज्ञान के आवरण मिट जाते हैं। साधक को आत्मज्ञान होता है। वह अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेता है। जीव और ब्रह्म का भेद मिट जाता है, तब वह ब्रह्म का साक्षात्कार पाता है और वह कह उठता है 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात मैं ब्रह्म हूँ। उसे जीव और ब्रह्म, आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता का बोध होता है। जीव ब्रह्म में विलीन हो जाता है। यही मोक्ष है, मुक्ति है, कैवल्य है, निर्वाण है, स्थितप्रज्ञता है, स्वरूपस्थिति है, स्वोपलब्धि है, अपवर्ग है।

मोक्ष को उपलब्ध हो जाने पर जीवनमुक्त साधक इस संसार को स्वप्न-प्रपंच के समान देखता है। वह चित्त को परब्रह्म में लीन कर विकार और क्रिया का त्याग कर सदा आनंदस्वरूप ब्रह्म में मग्न रहता है। वह निरंतर आत्मानंद का अनुभव करता है। साधन चतुष्टय के अलावा भक्तियोग, महर्षि पतंजलि द्वारा योगदर्शन में वर्णित अष्टांग योग, क्रियायोग (तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान), अभ्यास और वैराग्य की साधना एवं युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदर्शित उपासना-साधना-आराधना आदि योग-साधनों के निरंतर अभ्यास से मोक्ष की, आत्मज्ञान की, ब्रह्म-साक्षात्कार की परम उपलब्धि अवश्य ही हो सकती है। अस्तु अपनी रुचि-अभिरुचि के अनुसार हम किसी भी योग-साधना का अभ्यास कर सकते हैं। □

बिजली कड़ककर तपस्या करते योगी से बोली—"ऐ साधु! अभी मैं तुझ पर गिर पड़ूँ तो तेरा क्या होगा?"

साधु बोला—"यह शरीर नष्ट होगा और शेष तुम भी न रहोगी। परंतु मैं तो पुनः जन्म लेकर तपस्यारत हो जाऊँगा, तुम क्या करोगी?"

बिजली निरुत्तर हो गई।

सफल जीवन की दिशाधारा

सफलता हर व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्धियों से मिलकर सफलता बनती है, जिसके साथ जीवन में संतुष्टि का भाव भी जुड़ा होता है। इसके साथ एक ऐसी विरासत को अगली पीढ़ी के लिए छोड़ना भी सफलता का हिस्सा है, जिसमें एक श्रेष्ठ जीवन की प्रेरक महक विद्यमान हो।

हर व्यक्ति एक सफल जीवन का अधिकारी हो सकता है, यदि वह कुछ जाँचे-परखे सूत्रों को जीवन में धारण करता है, उनका अनुसरण करता है। इनमें सर्वप्रथम है—जीवन लक्ष्य की स्पष्टता। इसमें एक तो अपने कर्त्तव्य कर्मों से जुड़ा, नौकरी पेशे से जुड़ा लक्ष्य है, जिसके साथ आर्थिक सुरक्षा से लेकर परिवार-समाज के प्रति दायित्वबोध का भाव पूरा होता है।

इसके साथ अपनी मौलिकता एवं क्षमता के अनुरूप कुछ विशिष्ट योगदान की बारी आती है, जो एक प्रकाशपूर्ण जीवन के रूप में सबके लिए प्रेरणा एवं अनुगमन का स्रोत हो। हालाँकि यह क्रमिक रूप से ही संभव होता है और दीर्घकालीन प्रयास-पुरुषार्थ का फल रहता है। इसके लिए नियमित रूप से कार्य करना पड़ता है।

जीवनलक्ष्य एक दिन में सिद्ध नहीं होता, इसके लिए नियमित रूप से कार्य करना पड़ता है। कार्य कितना भी बड़ा क्यों न हो, शुरुआत छोटे-छोटे कदमों से करनी पड़ती है। ऐसे ही बड़े लक्ष्य को छोटे-छोटे टुकड़ों में तोड़कर नियमित रूप से हासिल करना पड़ता है।

इसके साथ काम आता है वह अध्यवसाय, जो तब तक साथ नहीं छोड़ता, जब तक कि लक्ष्य प्राप्त न हो जाए—जो तमाम विफलताओं, बाधाओं के बावजूद प्रयास को जारी रखता है व कार्य को पूरा करके ही दम लेता है। इसके लिए अपने दीर्घकालिक और तात्कालिक लक्ष्यों को सूचीबद्ध करना पड़ता है। जिसके साथ महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य भी व्यावहारिक स्वरूप ले पाता है और इसकी उपलब्धि सुनिश्चित हो जाती है।

इसके लिए समय को साधना पड़ता है, समय सीमा में कार्य करने की आदत डालनी पड़ती है; क्योंकि समय पर किए गए कार्य का ही महत्त्व होता है। इसके लिए कुछ मिनट से लेकर घंटों में विषयों या कार्यों को विभाजित किया जा सकता है। कार्य को बहुत कठिन बनाने की अपेक्षा नियमित रूप से करने का अभ्यास अधिक महत्त्वपूर्ण रहता है।

हार्डवर्क की अपेक्षा स्मार्टवर्क अधिक उपयुक्त रहता है, जिससे कम परेशानी में बेहतरीन परिणाम हासिल होते हों। छोटी-छोटी सफलताओं व उपलब्धियों के साथ हासिल हो रही मंजिल, बड़े लक्ष्य के लिए आवश्यक उत्साह को बनाए रखती है। साथ ही हर कदम के साथ मिल रहे सबकों को सीखने व आजमाने से आगे की सफलता सरल होती जाती है।

इस सबके लिए स्मार्ट लक्ष्य की बात कही गई है, जिसके पाँच आयाम हैं वो स्पेसिफिक, मेजरेबल, अटेनेबल, रेलिवेंट और टाइम-बेस्ड हों अर्थात वह स्पष्टता लिए हों, जिनकी प्रगति को मापा जा सके, जो प्राप्य हों, सार्थक हों तथा समय

आधारित हों। इन सबके साथ लक्ष्य के संबंध में अपनी रुचि का होना भी एक महत्त्वपूर्ण कारक रहता है। इससे मंजिल की ओर बढ़ता हर कदम, चाहे वो कितना ही कठिन व दुष्कर क्यों न हो, व्यक्ति को गतिशील रखता है।

अतः हाथ में लिए कार्य को रुचि के साथ करें और यदि कार्य में रुचि न हो तो रुचि पैदा करें। इसके लाभ पर विचार करें और इसके रुचिकर पक्ष को हाथ में लेकर आगे बढ़ें। राह में नई चीजों को सीखते हुए व नए लोगों से मिलते हुए जीवन का उत्साह बढ़ता है, जिससे राह चुनौतीपूर्ण होते हुए भी, आनंददायी बन जाती है। साथ ही अपने कार्यक्षेत्र को भी रुचिकर बनाएँ, जहाँ कार्य करना अच्छा लगे। इसके लिए अपने कार्यस्थल एवं परिवेश को स्वच्छ, प्राकृतिक एवं सुव्यवस्थित कर वहाँ उचित प्रकाश आदि की व्यवस्था करें।

सफलता की राह में कई तरह की समस्याएँ, चुनौतियाँ व अवरोध आएँगे। ये मोबाइल फोन से लेकर अमुक टीवी शो या सोशल मीडिया के रूप में हो सकते हैं, जो आपको लक्ष्य से विचलित करेंगे या व्यक्ति के रूप में हो सकते हैं, जो आपको तनाव देते हों। ये आलस्य, प्रमाद, संशय आदि के रूप में भी हो सकते हैं। इनकी सूची बनाएँ तथा इनसे निपटने की रणनीति बनाकर दृढ़ता से पालन करें।

ये अवरोध कुछ पलों के लिए आते हैं व कठिन परीक्षा लेते हैं। इनका दृढ़तापूर्वक सामना करें तथा इनसे आवश्यक सबक लेते हुए, मंजिल की ओर बढ़ें। धीरे-धीरे आपकी एकाग्रता बढ़ती जाएगी व आप कार्य में सफलता की ओर बढ़ रहे होंगे। इस तरह जो स्वयं के नियंत्रण में है, उस पर ध्यान दें, जिस पर आपका नियंत्रण नहीं, उस पर अधिक ध्यान न दें।

लक्ष्य पर ध्यान केंद्रित रखने के साथ यह भी ध्यान रखें कि अत्यधिक श्रम व थकान से बचें। अपनी यात्रा को उत्पादक बनाए रखने के साथ रुचिकर भी बनाएँ। आपका लक्ष्य ऐसा हो कि जो आपके लिए सतत आनंद का स्रोत बने, न कि एक बोझिल यात्रा बन जाए। ऐसे में यह चुनौतीपूर्ण होने के बावजूद आपकी यात्रा के रोमांच को बनाए रखेगा। सफर को रुचिकर बनाने के लिए बीच-बीच में विश्रांति के पल भी जोड़ सकते हैं तथा कुछ पुरस्कार भी।

इसके साथ अपनी जीवनशैली पर भी ध्यान दें, इसको संतुलित रखें तथा अच्छी आदतों को विकसित करें। समय पर सोने-जागने की आदत, उचित समय व तनाव प्रबंधन, वाणी-व्यवहार का संयम तथा आपसी रिश्तों में मधुरता आदि पर कार्य करें। नियमित रूप से आत्म-विश्लेषण करें तथा अपनी मौलिकता को पहचानें, इसे तराशें तथा विकसित करें।

अगले दिनों संसार का एक राज्य, एक धर्म, एक अध्यात्म, एक समाज, एक संस्कृति, एक कानून, एक आचरण, एक भाषा और एक दृष्टिकोण बनने जा रहा है; इसलिए जाति, भाषा, देश, संप्रदाय आदि की संकीर्णताएँ छोड़ें और विश्वमानव की एकता की, वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना स्वीकारने की मनोभूमि बनाएँ। —*परमपूज्य गुरुदेव*

इसी के इर्द-गिर्द जीवन की सफलता तथा विरासत को निर्धारित करें। इधर-उधर भटकने के बजाय अपनी अंतर्वाणी को सुनें, अपने गुरु के वचनों को याद रखें तथा अपने स्वधर्म पर अडिग रहें। इन सूत्रों के आधार पर जीवन के बाह्य-आंतरिक सभी पक्ष सधेंगे और समय के साथ समग्र सफलता का मार्ग प्रशस्त होगा। ❑

भगवद्भक्ति का मार्ग

ब्रह्मानुभूति, भगवदानुभूति को उपलब्ध संत एकनाथ की ब्रह्मनिष्ठा, ब्रह्मदृष्टि व ब्रह्मभाव उनके चरित्र में पग-पग पर दृश्यमान होते प्रतीत होते हैं। करुणा, प्रेम, क्षमा, शांति, निरहंकारिता, निर्विकारिता, निस्संगता, हरिभक्ति व परोपकार आदि गुणों से ओत-प्रोत उनका जीवन भगवद्भक्तों व भगवदानुरागियों को पग-पग पर भगवद्रस का पयपान कराता है।

संत वस्तुतः उन्हीं को कहते हैं, जो केवल कहते नहीं, वरन करके दिखाते हैं। बद्धों को मुमुक्षु और मुमुक्षुओं को मुक्त करने के लिए ही उनका जीवन होता है। जैसे गंगा, सागर से मिलने जाती है, पर सागर की ओर जाती हुई वह जगत् का पाप-निवारण भी करती जाती है, वह अपने दोनों ओर के वृक्षों को अपना अमृत जल पिलाती जाती है, वैसे ही संत अपने ज्ञान के अमृत से जगत् का पाप-निवारण करते हैं और भक्तों के हृदय में भगवत्प्रेम को अधिक-से-अधिक प्रगाढ़ करते जाते हैं।

जो आत्मस्वरूप को प्राप्त संत हैं, वे अपने सहज कर्मों से संसार में बँधे बद्धों को छुड़ाते, डूबे हुओं को उबारते और मुमुक्षुओं के लिए मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर जाते हैं और यह सब वे यह समझकर नहीं करते कि हम किसी पर कोई उपकार कर रहे हैं, बल्कि यह तो उनका सहज स्वभाव ही होता है। यही उनका आचरण होता है, जिसे देखकर सहस्त्रों लोग अपने लिए भगवदानुभूति का मार्ग प्रशस्त कर लेते हैं। उनके आचरण को प्रमाण मानकर लोग उनका अनुसरण करने लगते हैं और संसार-सागर से तर जाते हैं।

संत एकनाथ भी एक ऐसे ही संत थे, जिनके सदाचरण, भगवदानुराग, भगवच्चर्चा, भगवद्भजन, कथा-सत्संग और अमृतवाणी से सहस्त्रों जीव तर गए। संत एकनाथ महाराज के सत्संग और कीर्तन का लोगों के चित्त पर ऐसा असर होता था कि पैठण के लोग भगवच्चर्चा, भगवन्नाम-स्मरण के आनंद में मग्न हो जाया करते थे।

वे अपने सत्संग में अक्सर यह कहा करते थे कि अंतःशुद्धि (चित्तशुद्धि) ही भगवान को पाने का मुख्य साधन है। सच्चिदानंद भगवान को अपने ही हृदय के अंदर जानो और अनन्य होकर उन्हें पुकारो तो वे तुम्हारे बिलकुल पास ही हैं।

वे कहते कि संसार में साधु भी हैं और असाधु भी, पर परमार्थ और भगवन्मार्ग का पथिक दोनों को ब्रह्मरूप ही देखता है। इस प्रकार ब्रह्मरूप को देखते-देखते वह अपने निज आत्मस्वरूप को देख लेता है। वह अपने आत्मरूप, आत्मस्वरूप को जान लेता है और जहाँ ऐसी बात है, वहाँ भला किसकी निंदा की जाए और किसका गुण गाया जाए? क्योंकि सबमें तो उसी ब्रह्म का वास है। जब यह आत्मदृष्टि, ब्रह्मदृष्टि खुल गई और जब अपने निजस्वरूप का बोध हो गया तब स्तुति और निंदा भी तो उन्हीं में लय हो गई।

वे इस बात पर जोर देते थे कि तुम्हारा हर काम ही भगवान की ओर से भगवान के लिए नियत होता है। अतः तुम हर काम को भगवान का

ही काम समझकर करो। ऐसा करने से तुम्हारा हर कर्म पवित्र होगा और पाप-पुण्य से परे होगा।

वे अक्सर अपने सत्संग में कहते कि भगवान सब साधनों के साध्य हैं और सभी प्राणियों में भगवान को देखकर सर्वत्र अखंड ब्रह्मबुद्धि को स्थिर रखना और सबके कल्याण का उद्योग करना अर्थात लोकसंग्रह और लोकोपकार में तन-मन-प्राण अर्पण करना ही सच्ची हरिभक्ति है, सच्ची भगवद्भक्ति है। समदर्शी, निरपेक्ष और निरहंकारी होकर सभी प्राणियों में भगवान उपस्थित हैं—ऐसा जानकर जो लोकोपकार होता है, परोपकार होता है, वही उत्तम हरिभजन है, भगवद्भजन है, भगवद्सेवा है। सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं; क्योंकि जो स्थूल है, वही सूक्ष्म है; जो दृश्य है, वही अदृश्य है; जो व्यक्त है, वही अव्यक्त है; जो अंदर है, वही बाहर है; जो सगुण है, वही निर्गुण है। पर हाँ! निर्गुण, निराकार ब्रह्म का बोध होना बड़ा कठिन है; क्योंकि वह अगम्य है।

सगुण, साकार ब्रह्म का बोध सरल है। सगुण, साकार की उपासना सरल है। सगुण को देखते ही भूख-प्यास छूट जाती है। मन शांत हो जाता है। जो नित्य-सिद्ध सच्चिदानंद है; प्रकृति से परे परमानंद है, वही आनंदकंद भगवान अपनी लीला से सगुण हुआ है। इस प्रकार सगुण-निर्गुण का अभेद ही भागवत धर्म की शिक्षा है।

सचमुच बड़ी अद्भुत है संत एकनाथ की अमृतवाणी और भागवत धर्म की शिक्षा। उनके इस उपदेश का अनुपालन व उनके दिखाए पथ का अनुसरण कर कोई भी साधक अपने लिए मोक्ष, मुक्ति, आनंद और भगवत्प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है—इसमें कोई संदेह नहीं। श्रेष्ठ पथ का अनुसरण ही साधक के लिए अभीष्ट है। ❑

आजादी का संघर्ष चल रहा था। काकोरी रेल कांड के प्रमुख अभियुक्तों में से एक अशफाक उल्ला खाँ को फाँसी दी जानी थी। 19 दिसंबर, 1927 का दिन उनकी सजा-ए-मौत के लिए मुकर्रर हुआ था। फाँसी से 2 दिन पहले उनके बड़े भाई अपने बच्चों के साथ मिलने पहुँचे और अशफाक उल्ला खाँ को देखकर रोने लगे।

अशफाक उल्ला खाँ उनको थामते हुए बोले—"भाई जान! वो दूसरी कोठरी में तीन लोगों को फाँसी दी जा रही है। इन्होंने डेढ़ सेर गुड़ के लिए किसी की हत्या कर डाली। मुझे तो फक्र है कि मैं अपने मुल्क की आजादी के लिए फाँसी चढ़ रहा हूँ। ये तो आपके लिए शान की बात है।" 2 दिन बाद उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया गया, पर वतन पर मरने वालों के नाम सदा अमर रहते हैं।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

पर्व विशेष– संत रविदास जयंती

संत रविदास की भक्ति–साधना

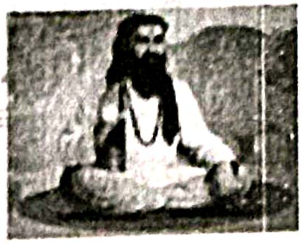

संत रविदास निष्काम भक्त थे। भगवत्प्रेम के अलावा उनके मन में कोई अन्य अभिलाषा नहीं थी। प्रभुभक्ति में ओत–प्रोत भक्त की बस यही एकमात्र सर्वोच्च अभिलाषा होती है कि वह भगवत्प्रेम का निरंतर रसपान करता रहे। इसलिए भक्ति स्वयं साधन और साध्य दोनों है। भक्ति स्वयं ही उद्देश्य है। भक्ति वह प्यास है, जो कभी मिटती नहीं और जब मिटती है तो फिर भक्त प्यासा ही नहीं रहता। भक्ति के द्वारा ही भक्त को परमानंद, ब्रह्मानंद का अनुभव होता है।

संत रविदास को जब यह भली भाँति ज्ञात हो गया कि भगवद्भक्ति में ही जीवन की पूर्णता है और यही मानव जीवन का परम उद्देश्य भी है, तब वे अपने मन को प्रभु के ध्यान में लगाने लगे और आर्त्तभाव से भगवद्कृपा की प्रार्थना करने लगे। भगवान का भजन, कीर्तन करते–करते उनमें भगवान के दर्शन की प्यास बढ़ती गई और वे आतुर होकर भगवद्दर्शन को व्याकुल रहने लगे।

कहते हैं कि जब भगवान के प्रति सच्ची भक्ति हो तो भगवत्प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करने को भक्त को किसी सद्गुरु का सान्निध्य अवश्य प्राप्त होता है। दैवयोग से संत रविदास को भी स्वामी रामानंद के रूप में एक ब्रह्मज्ञानी गुरु का सान्निध्य प्राप्त हुआ। उन्हें स्वामी रामानंद से **'रं रामाय नमः'** मंत्र की दीक्षा मिली। तभी से वे राम–जानकी की पूजा–अर्चना करने लगे।

कभी–कभी वे भावविह्वल होकर राम–जानकी की मूर्ति के सामने नाचने–गाने लगते। ध्यान, भजन, कीर्तन, पूजन के साथ–साथ नित्य सत्संग का क्रम भी चलता था। सत्संग, स्वाध्याय, ध्यान, नामस्मरण से जब उनकी चेतना जाग्रत हुई तब उन्होंने मूर्तिपूजा, अर्चना, धूप–दीप आदि बाह्य भक्ति–व्यवहार छोड़कर केवल नामस्मरण और भजन–कीर्तन तक ही अपने को सीमित कर लिया।

धीरे–धीरे उनकी भक्ति–भावना निखरती गई। इस प्रकार संत रविदास राम–नाम में डूबते गए और सभी बाह्य कर्मकांड और आडंबर उनसे छूटते गए। नामस्मरण और सत्संग ही उनकी साधना के आधार रह गए थे। वे नित्य परमात्मा के सामीप्य की खोज कर रहे थे।

वे प्रभु से प्रार्थना करते कि 'मेरी संगति खोटी है और मेरे कर्म खोटे हैं, मुझे तेरी संगति (सामीप्य) चाहिए। गंदे नाले का पानी गंगा की संगति से गंगोदक बन जाएगा, मुझे यही आशा है। तुम मुझे शरण दोगे। तुम पतितपावन हो। तुम्हारी महिमा पापों का हरण करती है। अगर पाप नहीं होते तो आप भला फिर क्या नष्ट करते। मेरी नाव पार करो। अब हृदय विमल है; क्योंकि हृदय में तुम बैठे हो। अब तो आपको मुझे बंधन–मुक्त करना ही पड़ेगा।'

वे भगवान के प्रेम में आकुल हो प्रार्थना करते कि 'हमने तुझे प्रेम–फाँस में बाँध लिया है। मछली से जैसे पानी नहीं छूटता, वैसे ही मुझसे तेरा छुटकारा असंभव है। विरह की व्यथा से रात तड़पते हुए बीतती है। एक–एक पल, एक–एक कल्प के बराबर व्यतीत हो रहा है।'

इस प्रकार उनकी विरह–वेदना बढ़ती गई और उनका नामस्मरण अजपा (मूक) होकर

भाव-भक्ति में परिवर्तित होता गया। परमात्मा का गुण-गान अब परमात्मा के ध्यान में बदल गया।

वे धीरे-धीरे सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान परब्रह्म में आत्मलीन होते गए। अब उन्हें सत्य के प्रकाश की ज्योति-शिखा दिखाई देने लगी थी और वे हर वस्तु में परमात्मा के दर्शन करने लगे थे। सर्वव्यापी परमात्मा उन्हें अपने भीतर ही प्रकट होता दिखाई देने लगा; जिसे वे देख सकते थे, छू सकते थे और अनुभव कर सकते थे।

धीरे-धीरे भेद मिटता गया और उन्हें यह अनुभव हुआ कि आत्मज्ञान ही मिलन है। भ्रम मिटते ही वे अपने में समाते गए, उनकी भटकन मिटती गई, प्रभु को पाकर उनकी परम प्यास मिट गई। वे स्थिर हो गए। वे वेद से वेदांत, इष्ट से ब्रह्म या सत्य तक पहुँच गए। माया मिट गई। जो सत्य उन्हें प्राप्त हुआ था या जिस सत्य को वह प्राप्त हो गए, वह उन्हें हर जगह दिखाई देने लगा। सचमुच जो ब्रह्म को जान लेता है, वह ब्रह्म के समान ही हो जाता है।

संत रविदास को ब्रह्म की अनुभूति हो चुकी थी। इस प्रकार सर्वव्यापी चेतना से आत्मसात् होने के कारण वे सबमें स्वयं को और स्वयं में सबको देखने लगे थे। वे सगुण-साकार से निर्गुण-निराकार के पुजारी हो चुके थे। उनकी साधना भाव-भक्ति में परिवर्तित हो गई और वे सत्य के सागर में समा गए। वे अब संत और गुरु के रूप में दूसरे जीवों को चेतना देने के लिए एक दीपक का काम करने लगे थे। वे जन-जन के बीच ज्ञान का अलख जगाने लगे थे।

इस प्रकार स्वामी रामानंद से राम-नाम की दीक्षा लेकर नित्य राम-जानकी का ध्यान करते हुए, प्रेम-विरह की डोरी को मजबूती से पकड़ राम-नाम की रट लगाते-लगाते, ध्यान करते-करते, सगुण-साकार से निर्गुण-निराकार उपासना करते-करते, वे परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर सके, अनुभव कर सके और अपने जीवन को धन्य करते हुए ज्ञान की अलख जगाते हुए औरों के लिए भी प्रभुप्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते रहे।

वे आजीवन भजन, कीर्तन एवं सत्संग करते रहे। दैनिक परिश्रम से जो भी मिलता उसी से अपने परिवार का भरण-पोषण करते रहे, साधुसेवा करते रहे। किसी साधु को नंगे पैर देखकर वे उन्हें निःशुल्क जूता दे दिया करते। धीरे-धीरे उनकी ख्याति चहुँओर फैलने लगी। लोग उनके दर्शन और सत्संग को आने लगे। मीरा जैसी साधिका, साध्वी उनकी शिष्या बन गईं। ❑

सिक्ख गुरु अमरदास जी ने जगह-जगह लंगर की व्यवस्था कराई थी, जहाँ बिना किसी भेदभाव के सभी लोग एक साथ भोजन ग्रहण कर सकते थे।

एक बार एक ब्राह्मण उनसे मिलने आया और बोला—"सभी जातियों के लोगों को एक साथ भोजन कराकर आप हमारा धर्म नष्ट कर रहे हैं।" अमरदास जी बोले—"ब्राह्मण वह होता है, जिसने ब्रह्म को जान लिया हो और जिसने ब्रह्म को जान लिया, उसे सृष्टि के कण-कण में उसकी उपस्थिति का भान हो जाता है। फिर आपको इनकी जाति कैसे दिखाई पड़ती है।" गुरुजी के मुख से आप्त वचन सुनकर उस व्यक्ति का जाति-अभिमान दूर हो गया और उसने अपना जीवन उनके चरणों में समर्पित कर दिया।

धर्म ही है मानव जीवन की धुरी

देव संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को पुरुषार्थ चतुष्टय कहा गया है। मनुष्य जीवन को आनंद से परिपूर्ण करने के लिए मनुष्य को पुरुषार्थ चतुष्टय अर्थात धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति करनी चाहिए। मोक्ष निस्संदेह जीवन का परम लक्ष्य है, पर धर्म के बिना मोक्ष तक की यात्रा पूरी कर पाना मनुष्य के लिए संभव नहीं है। अस्तु मानव जीवन में धर्म की महत्ता बहुत ही महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

धर्म की अर्थ, काम और मोक्ष इन तीनों में ही महत्त्वपूर्ण भूमिका है, पर आखिर धर्म है क्या? धर्म का स्वरूप क्या है? धर्म का अर्थ क्या है? धर्म को जीवन में जिएँ कैसे? शब्दकोश के अनुसार 'धर्म' शब्द की उत्पत्ति 'धृ' धातु से हुई है और 'धृ' का अर्थ है—'धारण करना।' दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि जिसको धारण किया जाए, वही धर्म है। गिरते हुए मनुष्य का आधार बनकर जो उसको धारण करता है या बचा लेता है, उसको धर्म कहते हैं।

ऋग्वेद (1.22.18) में **'अतो धर्माणि धारयन्'** के रूप में धर्म को धारण करने का उल्लेख है। महाभारत में **'धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः'** के रूप में धर्म के धारण करने का उल्लेख है, जिसका तात्पर्य है कि जो समाज को, जनसामान्य को धारण करे, वही धर्म है।

वहीं गीता के अध्याय 18 के 33वें श्लोक में **'धृत्या यया धारयते'** के द्वारा धारण करने का अर्थ-भाव स्पष्ट होता है। 'धारण करना' को सरल शब्दों में अपनाना भी कहा जा सकता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या धारण करना या अपनाना धर्म है? दरअसल यहाँ धारण करने या अपनाने से तात्पर्य उन गुणों को धारण करने या अपनाने से है, जिन्हें धारण कर लेने पर, जिन्हें अपना लेने पर जीवन ऊँचा उठता है, जीवन अपने चरम लक्ष्य को, परम लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है और मनुष्य का व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और पारलौकिक जीवन सुख-शांति-समृद्धि-संतुष्टि-तृप्ति और आनंद से ओत-प्रोत हो उठता है।

अब पुनः प्रश्न यह उठता है कि वे गुण कौन से हैं, जिन्हें धारण कर लेने या अपना लेने पर मनुष्य का जीवन सुख-शांति-समृद्धि और आनंद से आप्लावित हो उठता है। वे गुण कौन से हैं, जिन्हें धारण कर लेने या अपना लेने पर जीवन को पूर्णता प्राप्त होती है।

उन गुणों को प्रकाशित करते हुए मनुस्मृति (6.92) कहती है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

अर्थात धृति (धैर्य), क्षमा (औचित्य के प्रति उदारता), दम (मनःसंयम), अस्तेय (न्यायपूर्ण, ईमानदारीपूर्ण जीवन), शौच (बहिरंग व अंतरंग की पवित्रता), इंद्रियनिग्रह (विषयों के अधोगामी प्रवाह को रोकना), धी (विवेकबुद्धि), विद्या (आत्मज्ञान, पारलौकिक फल वाले सत्कर्मों में प्रवृत्ति), सत्य (मन, वचन, कर्म से व्यक्ति का शुद्ध

होना व प्रिय सत्य बोलना), अक्रोध (मानसिक समस्वरता, आत्मनियंत्रण, आवेश में न आना) आदि—ये दस लक्षण धर्म के बताए गए हैं।

ये ऐसे सद्गुण हैं, जो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के सर्वांगीण विकास, सुख-समृद्धि और आनंद के लिए आवश्यक हैं। जो मनुष्य इन सद्गुणों को धारण किए हुए है, अपनाए हुए है, आत्मसात् किए हुए है, वास्तव में वही सच्चा मनुष्य है। वही श्रेष्ठ मनुष्य है।

वह इन गुणों से परिपूर्ण होने के कारण हमेशा सच्चाई के मार्ग पर चलता है। उसका हर कर्म ही धर्ममय होता है, धर्म से युक्त होता है। वह कभी भी सच्चाई और ईमानदारी से विमुख नहीं होता। वह कभी भी हिंसा, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, दुराचार, अनाचार, बेईमानी, झूठ आदि बुरे कर्मों में लिप्त नहीं होता।

वह अपने हर कर्म को ही धर्म की दृष्टि से, सत्य की दृष्टि से देखकर करता है। वह व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्य व दायित्वों का निर्वाह बड़ी ही ईमानदारी, सच्चाई, जिम्मेदारी, समझदारी और बहादुरी के साथ करता है। वह कभी बुराई अर्थात अधर्म के मार्ग पर नहीं चलता। वह सदैव ही धर्म के मार्ग पर चलता है। वह सफलता पाने, धन पाने, सम्मान पाने के लिए कभी भी, कहीं भी अधर्म का सहारा नहीं लेता, अनीति का सहारा नहीं लेता। विपरीत-से-विपरीत, कठिन-से-कठिन परिस्थितियों में भी वह सत्य से विचलित नहीं होता।

वह धर्म से विचलित नहीं होता, वह कभी भी, कहीं भी अपने सत्य-धर्म और ईमान को गिरवीं नहीं रखता। चूँकि वह सदैव धर्म का पालन करता है अर्थात धर्म के मार्ग पर चलता है, इसलिए उसकी सर्वत्र जय होती है, उसकी जय-जयकार होती है। हाँ! सत्य पर चलते हुए, धर्म पर चलते हुए उसे संघर्ष करना पड़ता है, पर उसे यह भली भाँति आभास होता है कि सत्य परेशान हो सकता है, पर परास्त नहीं; क्योंकि अंततः जीत सत्य की ही होती है। जैसा कि कहा गया है—'**सत्यमेव जयते**'। सत्य को धर्म के रूप में मानते हुए ईशावास्योपनिषद् (15) में कहा गया है कि ऋषियों ने सत्य को धर्म के रूप में देखा है—**सत्यं धर्माय दृष्टये**।

वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकांड—14.7 में भी कहा गया है कि सत्य ही धर्म की प्रतिष्ठा है। इसलिए महाभारत, आदिपर्व, में भी कहा गया है—'**सत्यान्नास्ति परोधर्मः**' अर्थात सत्य से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं। सत्य से बढ़कर कोई धर्म, नीति, तप, बल नहीं माना गया है। इस प्रकार सत्य को धर्म के रूप में और धर्म को सत्य के रूप में अभिन्न माना गया है।

सत्य को इतना अधिक महत्त्व देने का आखिर कारण क्या है? इसका कारण यह है कि जो 'सत्य' जैसे सद्गुण को अपने जीवन में धारण कर लेता है, उसके अंदर शेष सभी सद्गुण स्वयमेव ही आ जाते हैं; क्योंकि सत्य स्वयं में इतना ताकतवर, इतना बलवान है कि वह अन्य सद्गुणों (करुणा, प्रेम, क्षमा, अक्रोध आदि) को अपनी ओर स्वयं ही आकर्षित कर लेता है।

इसलिए सत्य का पालन करने वाला व्यक्ति सांसारिक सुख के साथ-साथ आत्मसाक्षात्कार, ईश्वर-साक्षात्कार करने में भी समर्थ हो जाता है। सत्य की श्रेष्ठता और पूर्णता के कारण ही तो सत्य को ईश्वर कहा गया है। सत्य के विषय में कहा गया है—**सत्यम् शिवम् सुन्दरम्** अर्थात जो सत्य है, वही शिव है (कल्याणकारी है) और जो कल्याणकारी है, वही सुंदर है। सत्य ही शिव है, और शिव ही सुंदर है।

सत्य की श्रेष्ठता के कारण ही परमपूज्य गुरुदेव कहा करते थे कि सत्य में हजार हाथियों के बराबर बल होता है। जो सत्यवान है, वही धर्मनिष्ठ है और उसे कभी कोई परास्त नहीं कर सकता। उसका सत्य, उसका धर्म सदैव उसकी रक्षा करता है। जहाँ अधर्म, असत्य अर्थात बुराई के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति अंततः नाना प्रकार के दुःखों से घिर जाता है, संकटों से घिर जाता है और विनाश को प्राप्त होता है तो वहीं सत्यवान, धर्मवान व्यक्ति संकटों और विपदाओं से भी बाहर निकल आता है। क्यों?

क्योंकि उसका धर्म ही उसकी रक्षा करता है; उसका सत्य ही उसकी रक्षा करता है। इसलिए श्रुति कहती है—''**धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।**' अर्थात धर्म का जो नाश करेगा, धर्म उसका नाश करेगा और जो धर्म की रक्षा करेगा, धर्म उसकी रक्षा करेगा।

इस सूत्र के वास्तविक अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव लिखते हैं कि धर्म के नाश का अर्थ है धर्म की उपेक्षा करना तथा धर्म की रक्षा का अर्थ है धर्माचरण करना अर्थात धर्म को अपने जीवन में जीना, धर्म पर चलना।

धर्मप्रधान अर्थात धर्मयुक्त जीवन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र व संस्कृति के सर्वांगीण अभ्युदय का कारण बनता है तो वहीं धर्मरहित जीवन व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व संस्कृति के पतन का कारण बनता है। इसलिए मनु कहते हैं—'**परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ**' अर्थात मनुष्य को ऐसे अर्थ और काम का परित्याग कर देना चाहिए, जो कि धर्म से रहित हो।

जैमिनीकृत मीमांसा (मीमांसा सूत्र-1.1.2) में कहा गया है कि धर्म का अर्थ श्रेयस्कर अर्थात मंगलजनक होता है, जिससे अभ्युदय साधित होता है। कणाद मुनि के वैशेषिक सूत्र 1.1.2 में कहा गया है कि '**यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।**' अर्थात धर्म वह पदार्थ है, जिससे सांसारिक जीवन में अभ्युदय और जीवन के परम लक्ष्य निःश्रेयस—दोनों की सिद्धि होती है।

गीता में राग-द्वेष को जीतकर स्वधर्मपालन, शास्त्रविधि से नियत कर्म करना, यज्ञादि कर्म करना, अनासक्त भाव से कर्त्तव्य कर्म का अच्छी तरह आचरण करना, पालन करना, निष्काम कर्म करना, समत्व बुद्धिभाव से पाप-पुण्य दोनों के प्रति आसक्ति का त्यागकर कर्त्तव्यपालन करने एवं कर्मबंधन से मुक्त होने के उपाय को ही धर्म माना गया है।

रामचरितमानस में कहा गया है—''**पर हित सरिस धरम नहिं भाई**' अर्थात परोपकार के समान दूसरा कोई धर्म नहीं। भागवतपुराण में विद्या, दान, तप और सत्य—धर्म के चार पद माने गए हैं। इस प्रकार विविध धर्मग्रंथों में धर्म को स्पष्ट करते हुए इसे जीवन में धारण करने पर बल दिया गया है; क्योंकि धर्म के बिना स्वस्थ, सुखी, समृद्ध व्यक्ति, परिवार, समाज व राष्ट्र की कल्पना नहीं की जा सकती।

जो धर्मनिष्ठ है, वही जीवित है और जो धर्महंता है, वह आत्महंता है। अधर्म अल्पकाल के लिए भले ही बलवान प्रतीत होता हो, किंतु अंत में उसका विनाश सुनिश्चित है और धर्म अल्पकाल के लिए भले ही संघर्ष करता हुआ या संकटों से घिरा हुआ दिख रहा हो, किंतु अंत में उसकी जय सुनिश्चित है।

हमें भी अपने जीवन में धर्म को धारण कर अपने जीवन को सुख-शांति-समृद्धि और आनंद से आप्लावित कर लेना चाहिए। धर्मयुक्त जीवन ही जीवन है और धर्मरहित जीवन निस्संदेह निकृष्ट जीवन है।

सचमुच धर्म ही धारण करने की चीज है; क्योंकि धर्म ही हमारे जीवन की धुरी है। जैसे जड़ से जीवन-रस प्राप्त करता हुआ एक नन्हा-सा पौधा विराट वृक्ष बन जाता है, पुष्पों और फलों से लद जाता है, उसी प्रकार धर्मरूपी जड़ से जीवन-रस पाकर व्यक्ति का जीवन महानता, उत्कृष्टता और आनंद की ओर अग्रसर होता है। जड़ जितनी गहरी और मजबूत होती है, वृक्ष उतना ही विराट और विशालकाय होता है। सचमुच जीवनरूपी वृक्ष की जड़ है धर्म।

वास्तविक धर्म हर स्थिति में मनुष्य का कल्याण ही करता है। इसलिए ऋग्वेद कहता है— **'सुगा ऋतस्य पंथाः'** अर्थात धर्म का मार्ग मानव को सुख देता है और दुःख से मुक्त करता है। जीवन में धर्म को अपनाने के लिए, जीने के लिए धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझना भी आवश्यक है।

'धर्म' शब्द का बड़ा व्यापक अर्थ है, अभिप्राय है। धर्म किसी पंथ, संप्रदाय, मजहब अथवा रिलीजन से परे एक शाश्वत नीतिदर्शन का नाम है, जो मूलतः संवेदना की धुरी पर जन्म लेता है, पर आजकल विशेष वेश-विन्यास धारण कर लेने व कुछ मजहबी क्रियाएँ व कर्मकांड को ही धर्म समझा जाने लगा है। धर्म के नाम पर अधर्म व पाखंड का बोलबाला हो चला है, पर इससे अब तक किसी का भला न तो हो पाया है और न ही हो पाएगा।

इसलिए किसी ने सही ही कहा है कि 'धर्म के नाम पर आज हम सब लिप सर्विस मात्र करते हैं।' अर्थात धर्म के नाम पर हम ओंठों से बुदबुदाने वाले कर्मकांड मात्र का प्रयोग करते हैं; जबकि धर्म व्यक्तित्व के परिष्कार की व उस माध्यम से उसके सारे समाज पर पड़ने वाले प्रभाव की विधा का नाम है।

वहीं धर्म के वास्तविक स्वरूप को प्रकाशित करते हुए परमपूज्य गुरुदेव युगऋषि श्रीराम शर्मा आचार्य जी लिखते हैं कि 'जो मनुष्य को संयमी, संवेदनशील और श्रेष्ठ बनाए, वही धर्म है और जो उसे असंयमी, संवेदनहीन और भोगवादी बनाए, वही अधर्म है।'

वास्तव में मनुष्य की भाव-संवेदना का विकास ही धर्म है। वस्तुतः धर्म हमें स्वयं के साथ-साथ परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्वमानवता के प्रति हमारे कर्त्तव्य की प्रेरणा देता है। साथ ही धर्म हमें फल के प्रति तटस्थ रहकर कर्त्तव्य कर्म करने की प्रेरणा देता है।

धर्म के विभिन्न अंगों को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं कि 'नीतिविज्ञान अर्थात नैतिकता धर्म का प्रथम अंग है। धर्म नैतिकता पर आधारित एक ऐसा अनुशासन है, जो व्यक्ति की चेतना में संवेदना को जन्म दे, उसे अंकुरित-पोषित होने हेतु समुचित वातावरण प्रदान करे। सच्चा धर्म वही है, जो मनुष्य को अनुशासन में बाँधता है।'

नियमबद्ध, अनुशासित व संयमपूर्ण जीवन ही समृद्ध व्यक्तित्व बनाता है व यह कार्य धर्माचरण से ही संभव होता है। संभवतः इसलिए ऋषियों ने कहा है **'धर्मान्न प्रमदितव्यम्'** अर्थात धर्म में प्रमाद या असावधानी नहीं बरतनी चाहिए। आधुनिक सभ्यताएँ मनुष्य को नैतिक बंधनों से परे धर्मरहित अर्थ व काम की प्राप्ति व उपार्जन हेतु प्रेरित करती हैं और मन की पैशाचिक दासता को स्वीकारने की प्रेरणा देती हैं, जिसका परिणाम हमारे सामने है। प्रत्यक्षतः आज लौकिक जीवन में जो रोग, दुःख, दुर्बलताएँ, अशांति और पारस्परिक विग्रह नजर आ रहे हैं, वे सब इसी कारण पनपे हैं। इसलिए सुखमय जीवन के लिए जीवन में नैतिकता अर्थात धर्म का पालन आवश्यक है।

धर्म का द्वितीय अंग है—आस्तिकता। आस्तिकताप्रधान तत्त्वदर्शन। आस्तिकता मानवी अतिचेतन का एक अनिवार्य व महत्त्वपूर्ण गुण है, जिससे मनुष्य को ऊँचा उठाने वाली, दुर्बलताओं से मुक्ति दिलाने वाली, श्रेष्ठ व उदात्त भावनाओं का उदय होता है। आस्तिकता से ही व्यक्ति को स्वयं पर पूर्ण विश्वास होता है। उसे अपनी क्षमताओं पर विश्वास होता है, जिसके कारण उसमें आत्मविश्वास व आत्मबल का जागरण होता है। आस्तिकता ही मनुष्य में प्रतिभा-जागरण का मूलकेंद्र भी है। स्वयं पर विश्वास करना ही आस्तिकता है। जिसका स्वयं पर ही भरोसा नहीं, वह ऊँचा नहीं उठ सकता।

'आध्यात्मिकता' धर्म का तृतीय अंग है। आध्यात्मिकता के बिना धार्मिकता की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अध्यात्म धर्म का प्राणतत्त्व है। धर्म अनगढ़ मानव को सुगढ़ व देवमानव बनाने व उसे सही दिशा देने वाला एक गहन विज्ञान है, जिसे हम अध्यात्म कहते हैं। अध्यात्म ही धर्म की आत्मा है। अध्यात्म ही धर्म का सार है। अध्यात्म के बिना धर्म की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आध्यात्मिकता के बिना धार्मिकता कैसी? मनुष्य में सत्य, प्रेम, करुणा व भाव-संवेदना की प्रगाढ़ता ही आध्यात्मिकता है और ऐसी आध्यात्मिकता ही धार्मिकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म नैतिकता, आस्तिकता व आध्यात्मिकता का समुच्चय है। नैतिकता, आस्तिकता व आध्यात्मिकता का सम्मिलित रूप ही धर्म है। हमें भी अपने भीतर नैतिकता, आस्तिकता और आध्यात्मिकता को विकसित कर सही माने में धार्मिक बनने और सुख-शांति-समृद्धि-मुक्ति व आनंद प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। ❑

विंध्याचल पर्वत पर एक तपस्वी तपस्यारत थे। शनैः-शनैः उनकी तपस्या प्रगाढ़ होती गई और उससे उत्पन्न ऊर्जा देवलोक तक पहुँचने लगी। देवराज इंद्र को चिंता हुई कि यदि तपस्या का तेज ऐसा ही रहा तो कहीं उनका सिंहासन न चला जाए। यह सोचकर कि तपस्वी को तपस्या से विमुख करना है, इंद्र उनकी झोंपड़ी पर एक राजा का वेश बनाकर पहुँचे। तपस्वी को प्रणाम कर इंद्र ने उनसे कहा—"ऋषिवर! मैं कलिंग देश का राजा दधिवाहन हूँ। मेरे शत्रु मेरे पीछे लगे हैं। मेरे पास एकमात्र संपदा के रूप में यह रत्नजड़ित तलवार है। आप तो वीतराग पुरुष हैं, कृपया इसे अपनी झोंपड़ी में एक कोने में रख लें। मैं स्वयं सुरक्षित होते ही इसे लेने आ जाऊँगा। तपस्वी को इस प्रस्ताव में कोई समस्या न जान पड़ी। अतः उन्होंने तलवार को झोंपड़ी के एक कोने में रख लिया। थोड़े दिन बीत गए, अब तपस्वी को लगा कि कहीं कोई और तलवार न चुरा ले जाए, सो उन्होंने आगंतुकों से अनुरोध कर एक छोटी आलमारी तलवार के लिए बनवा ली। चिंता और बढ़ी तो उसके लिए ताला मँगवाया। थोड़ी चिंता और होने पर वो मकान बनवाने लगे और धीरे-धीरे उनका मन तपस्या से पूरी तरह विमुख हो गया। शास्त्रों में इसीलिए लेशमात्र आसक्ति को भी त्याज्य कहा गया है।

दैनिक जीवन में अध्यात्म

अध्यात्म की उपयोगिता एवं श्रेष्ठता सर्वविदित है, लेकिन सामान्यतया इसे आराम के समय या बुढ़ापे की विषयवस्तु माना जाता है तथा दैनिक जीवन से जिसका सीधा संबंध नहीं समझा जाता। इसी कारण धर्म-अध्यात्म के नाम पर नित्य चिह्नपूजा की कमी नहीं रहती, लेकिन अधिकांश लोगों की चिंतन-चेतना तथा जीवन अध्यात्म तत्त्व से रीता ही रह जाता है; क्योंकि इसके साथ जिन फलश्रुतियों की चर्चा की जाती है, इनसे जीवन को वंचित पाया जाता है।

ऐसे में अध्यात्म तत्त्व क्या है, इसका दैनिक जीवन में सहज रूप से कैसे समावेश हो, इसका बोध आवश्यक हो जाता है। अध्यात्म समग्रता में जीवन का अध्ययन है, इसके गहनतम तल तक पहुँचने की विधा है, जिसके साथ क्रमिक रूप में व्यक्तित्व का रूपांतरण होते हुए जीवन के यक्षप्रश्नों का समाधान मिल सके।

निस्संदेह रूप में अध्यात्म संसार-समाज-परिवार में रहते हुए अंतर्मुख जीवन का अभ्यास है, जिसमें परमात्मतत्त्व से जुड़कर, अंदर आत्मतत्त्व में स्थिर होकर जीवनयापन किया जाता है। संक्षेप में जीवन के केंद्र में स्थिर होते हुए परम सत्य की ओर उन्मुख जीवन अध्यात्म है, जिसमें स्वयं की मुक्ति तथा जगत् के कल्याण का भाव निहित रहता है।

परमपूज्य गुरुदेव ने इसके लिए जीवन-साधना की बात कही है, जिसमें दैनिक जीवन के हर पक्ष को नियम, संयम और अनुशासन में आबद्ध कर इसे एक सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित ढंग से जिया जाता है।

परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रतिपादित व्यावहारिक अध्यात्म के अंतर्गत प्रातः आत्मबोध से प्रारंभ दिनचर्या रात्रि में तत्त्वबोध के साथ पूर्ण होती है, जिसमें दिन भर की दिनचर्या का हिसाब-किताब करते हुए अगले दिन की तैयारी की जाती है। दिन भर की दिनचर्या में जीवन का हर आयाम एक अनुशासन के दायरे में आबद्ध रहता है।

दिन का प्रारंभ निस्संदेह रूप में ईश्वर के प्रति कृतज्ञता के इस भाव के साथ होता है कि आज एक नए जीवन की शुरुआत हो रही है, हम एक स्वस्थ-सुखी जीवन के साथ एक नए दिन के लिए तैयार हो रहे हैं।

इसी तरह रात्रि का समापन दिन भर के संघर्ष, पुरुषार्थ एवं उतार-चढ़ाव के बीच एक सार्थक जीवन की कवायद के साथ ईश्वर के प्रति कृतज्ञता एवं समर्पण भाव के साथ होता है, जिसमें परमात्मा का संरक्षण, सहारा पग-पग पर मिलता रहा।

दिन भर इस भाव को बनाए रखा जाता है, जिससे स्वाभाविक रूप में सोते समय ईश्वर-सुमिरन के साथ दैनिक जीवन का समापन होता है। साधना के बढ़ते क्रम में जीवन के हर पल, हर भाव में अपने इष्ट-आराध्य की उपासना व आराधना के समावेश का प्रयास रहता है।

इस प्रक्रिया को सरल बनाता है स्वाध्याय-सत्संग का क्रम, जिसका यथासंभव दिनचर्या में अधिकाधिक समावेश किया जाता है। प्रारंभ स्नान-

ध्यान के साथ या बाद में आध्यात्मिक पुस्तकों के अध्ययन एवं पारायण के साथ होता है, जिसमें शास्त्रों से लेकर युगसाहित्य को माध्यम बनाया जाता है।

इसके प्रकाश में जीवन का अवलोकन किया जाता है, अपने दोष-दुर्गुणों के परिमार्जन और श्रेष्ठ गुणों को धारण करने का भाव-संकल्प जाग्रत रहता है। गुरुप्रदत्त मंत्र के साथ जप-ध्यान करते हुए उपासना के पल निस्संदेह रूप में इसके केंद्र में रहते हैं।

उपासना के साथ दिन भर कसी हुई दिनचर्या के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन व्यावहारिक अध्यात्म का अनिवार्य पहलू है। जिससे जीवन में, मन के किसी कोने में निठल्लेपन की, शरीर के आलस और चित्त के बिखराव की कोई गुंजाइश न रहे।

गुरुदेव के शब्दों में दिन भर इंद्रिय संयम, समय संयम, विचार संयम और अर्थ संयम के अभ्यास के संग एक नैष्ठिक साधक बनकर इसे संपन्न किया जाता है।

इंद्रिय संयम में स्वाद, वाणी, दृष्टि और स्पर्श प्रधान रहते हैं, जिनके निग्रह और साधना के साथ जीवन-साधना में प्रखरता आती है। समय संयम कार्य की प्राथमिकताओं के आधार पर निपटारा करते हुए एक संतुलित एवं सफल जीवन को संभव बनाता है।

विचार संयम में श्रेष्ठ विचारों में रमण, अपने कार्य में व्यस्तता, सतत आत्मचिंतन, प्रभुभजन और लक्ष्य के प्रति एकनिष्ठभाव का अभ्यास किया जाता है। मितव्ययतापूर्ण सादा जीवन-उच्च विचार तथा फजूलखर्ची से बचने के प्रयास के साथ अर्थ संयम सधता है।

दूसरों के साथ सत्यनिष्ठ, मधुर एवं शालीन वाणी-व्यवहार अध्यात्म का अनिवार्य पहलू है, जिसमें शालीनता, सहकारिता, विनम्रता, संवेदनशीलता जैसे सद्गुणों का आचरण में यथासंभव समावेश किया जाता है।

इसके साथ दैनिक जीवन में प्रकृति का सान्निध्य सहज रूप से जीवन के आध्यात्मिक सत्य से जोड़ता है। प्रकृति की गोद में बिताए कुछ पल परमेश्वर के साथ तथा स्वयं से जुड़ने के माध्यम बन जाते हैं।

इसके साथ बीच-बीच में मौन, उपवास, एकांतवास के प्रयोग इसमें नया रस घोलते हैं। ये सब प्रयोग साधना की प्रारंभिक अवस्था में आध्यात्मिक उन्नति-प्रगति में बहुत सहायक रहते हैं।

बहुत अधिक बहिर्मुखता तथा कुसंग के दोष से बचना श्रेयस्कर रहता है। इस संदर्भ में बरती गई हलकी-सी भी लापरवाही साधना के बीजांकुर को पुष्पित-पल्लवित होने से पहले ही उस पर तुषारापात कर देती है। इस तरह अपनी आत्मिक प्रगति के लिए सजग-सचेष्ट जीवन अध्यात्म का अनिवार्य पहलू है।

इस संदर्भ में आजकल स्मार्टफोन का संयमित एवं विवेकसंगत उपयोग अभीष्ट हो जाता है। मोबाइल में तमाम तरह की सामग्री भरी रहती है, दूसरा इसकी लत लगने पर फिर छूटने का नाम नहीं लेती।

उपयोगकर्त्ता आजकल घंटों इसकी मायावी दुनिया में भटकने के लिए विवश-बाध्य देखे जाते हैं और अपने कर्त्तव्य एवं जीवन लक्ष्य की कीमत पर इसमें उलझते देखे जाते हैं। अतः अपने शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य एवं आत्मिक उन्नति की दृष्टि से मोबाइल का अनुशासित उपयोग करें। जितना आवश्यक हो, उतना ही इसको अपने जीवन व कक्ष में स्थान दें।

रात को दिन भर की दिनचर्या का मूल्यांकन तथा डायरी लेखन के साथ रात्रि विश्राम की ओर बढ़ना आध्यात्मिक जीवन का महत्त्वपूर्ण पहलू है। डायरी में दिन भर का लेखा-जोखा करें; जहाँ

प्रगति की हो, वहाँ स्वयं को शाबाशी दें तथा जहाँ सुधार की गुंजाइश हो, वहाँ प्रायश्चित से लेकर प्रार्थना एवं नए संकल्प का सहारा लें।

इस तरह मन को खाली कर, कृतज्ञता के भाव के साथ निद्रा देवी की गोद में प्रवेश करें। मानकर चलें की मृत्यु की गोद में प्रवेश कर रहे हैं। यह अभ्यास जीवन को गहरे स्तर पर जीने का आधार देगा तथा ऐसे में निद्रा योगनिद्रा का रूप लेते हुए एक नई स्फूर्ति व ताजगी का माध्यम बनेगी और जीवन नए आध्यात्मिक सत्य के साथ पुष्ट व समृद्ध होता जाएगा। □

आजीवन सदस्य कृपया ध्यान दें

आपने जब आजीवन सदस्यता स्वीकार की थी, तब से अब तक महँगाई इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि पत्रिका की आजीवन सदस्यता का निर्वहन कर पाना कठिन हो रहा है। अब पूर्व की सुरक्षानिधि में आजीवन सदस्यता बनाए रखना संभव नहीं जान पड़ता। जो सदस्य रुपये 150 (सन् 1982) में बने थे, उन्हें अभी तक पत्रिका भेजी जा रही है; जबकि वार्षिक चंदा रुपये 15 (सन् 1982) से बढ़कर रुपये 300 हो गया है— भविष्य में और बढ़ता रहेगा। ऐसी स्थिति में आजीवन सदस्यता को पुरानी शर्तों पर जारी नहीं रखा जा सकेगा।

अब नई व्यवस्था के अनुसार आजीवन सदस्यता 20 वर्ष तक सीमित रहेगी। उसका अब चंदा रुपये 6000/- होगा। हम सबकी यही अपेक्षा है कि जो श्रद्धा-स्नेह का संबंध लंबे समय से बना हुआ है, वह और भी प्रगाढ़ होगा। अखण्ड ज्योति का आलोक आपको एवं अन्य परिजनों को आलोकित करता रहेगा।

इसके लिए हम आपके समक्ष निम्न विकल्प प्रस्तुत कर रहे हैं—

(1) आपका आजीवन शुल्क जो भी जमा है, उसे काटकर शेष रुपया और भेज दें, ताकि आपकी आजीवन सदस्यता (20 वर्षीय) बनी रहे। राशि बैंक ड्राफ्ट/चैक/RTGS/NEFT से भेजी जा सकती है। राशि भेजने के लिए बैंकों का विवरण पत्रिका में पृष्ठ सं. 65 पर दिया गया है।

(2) आपकी आजीवन सदस्यता समाप्त कर दी जाए एवं जमा सुरक्षानिधि वार्षिक चंदा में ट्रांसफर कर दी जाए। उस राशि से वार्षिक चंदा रुपये 300/- के हिसाब से जब तक का चंदा बने अखण्ड ज्योति भेज दी जाए।

(3) यदि किन्हीं कारणोंवश ऐसा संभव न हो पा रहा हो तो अपने बैंक खाते की जानकारी भेजने का अनुग्रह करें, जिससे आपको राशि वापस भेजी जा सके। विवरण मिलने पर आपके खाते में सीधे रुपया भेज दिया जाएगा।

पत्र व्यवहार में अपनी सदस्य संख्या, नाम, पता, फोन नंबर, ई-मेल का उल्लेख अवश्य करें।

आप सबको पत्र द्वारा सूचित किया जा चुका है, संभव है किसी कारणवश पत्र न मिला हो। अपनी सहमति का पत्र डाक/ई-मेल द्वारा भेजने का अनुग्रह करें।

—अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा-281003

Email-akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

कैसे हुआ प्रथम सहस्रकुंडीय यज्ञ

मुझे उन दिनों की याद है, जब सहस्रकुंडीय यज्ञ उन पर थोपा गया था। मार्गदर्शक का आदेश हुआ कि देश भर की सुसंस्कारी आत्माओं को एकत्रित करके उन्हें नवनिर्माण के लिए तत्पर होने की प्रेरणा दी जाए। युगपरिवर्तन-अभियान का श्रीगणेश करने के लिए सहस्रकुंडीय गायत्री यज्ञ किया जाए।

उसकी जो रूपरेखा बताई गई, वह अति विशाल थी।

(1) चार लाख संस्कारी व्यक्तियों को ढूँढ़ना और उन्हें बुलाना,

(2) इतने व्यक्तियों के निवास, भोजन आदि की निःशुल्क व्यवस्था करना,

(3) सहस्रकुंडीय यज्ञ के साधन-उपकरण जुटाना,

(4) आगंतुकों में हरेक के साथ विचार-विमर्श करके उनकी स्थिति के अनुरूप काम बाँटना।

यह चारों ही काम कहने-सुनने में भले ही सरल लगते हों, पर उनकी बारीकियों पर विचार किया गया और उसकी रूपरेखा तथा आवश्यकता का ढाँचा खड़ा किया गया, साधनों का अनुमान लगाया गया तो उन्हें पसीना आ गया। कहाँ अपनी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति और कहाँ यह आयोजन।

मात्र उत्सव भी तो नहीं था, जो धन के आधार पर कर लिया जाए? चार लाख व्यक्ति कहाँ से तलाश किए जाएँ? फिर वे अपरिचित के आमंत्रण पर इतना समय और पैसा खरच करके आने को क्यों तैयार होंगे? आ भी गए तो चार लाख व्यक्तियों की पाँच दिन की व्यवस्था में जो खरच पड़ेगा, वह कहाँ से आएगा। लोग आ भी गए, खरच का साधन बन भी गया तो सबसे संपर्क, विचार-विमर्श और कार्य विभाजन तो सर्वथा असंभव है।

असंभव को संभव कैसे बनाया जा सकता है। इसी अंधकार में उनका सिर घूमने लगा। लगा कि वे कार्य को पूरा कर सकना तो दूर, उसकी विशालता सोचने मात्र से संतुलन खो बैठे हैं। फिर उन्हें नया प्रकाश मिला और बताया गया—वे अपनी वस्तुस्थिति को न भूलें।

अदृश्य मार्गदर्शक ने उन्हें मात्र दृश्य माध्यम बनाया है, जो कार्य जिसका है, उत्तरदायित्व भी उसी का है। पूरा भी वही करेगा, व्यवस्था तथा साधन भी वही जुटाएगा। उन्हें तो दृश्य प्रतीक की तरह हाथ-पाँव चलाते भर रहना है। भ्रम दूर हुआ तो हँस-हँसकर पूरी निश्चिंतता के साथ काम करने लगे।

लोगों को अचंभा होता था। काम इतना बड़ा और साधन नगण्य। आमतौर से उन दिनों उन्हें सनकी और विक्षिप्त समझा गया था और किसी भी समझदार ने उनका साथ देने से इनकार कर दिया था।

रीछ-वानरों की सेना इकट्ठी करके ही वे कुछ महीनों पहले से इस कार्य की औंधी-सीधी रूपरेखा और व्यवस्था जुटाने का कार्य करते रहे हैं। समीक्षा करने वालों को यह सिर्फ पागलपन ही लग रहा था। नियत समय पर हर कार्य इस तरह

होता चला गया मानो सब कुछ पहले से ही सुनिश्चित करके रखा गया हो। सब कुछ जादू जैसा हुआ।

निमंत्रण पत्र कुछ हजार ही छपे थे और कुछ हजार पतों पर भेजने के अतिरिक्त वह सूझ ही नहीं पड़ा कि शेष को कहाँ भेजें? पर लगभग चार लाख व्यक्ति ही आए और उन्हें आमंत्रण ही नहीं, ऐसा आंतरिक दबाव भी अनुभव हुआ कि उसमें सम्मिलित हुए बिना छुटकारा नहीं।

निवास के लिए कुल पाँच हजार डेरे-तंबू जुटाए जा सके थे। खाद्य पदार्थ एक हजार मन खरीदा जा सका था। यह तो कुछ हजार व्यक्तियों के लिए भी अपर्याप्त था, पर इतने में ही सब कुछ निपट गया। बिना मूल्य भोजन-भंडार चलता रहा और अंत में पाँच सौ मन बचा हुआ खाद्य पदार्थ वितरित करना पड़ा।

पैसा दानपेटियों में एक लाख से कम ही निकला था। जिसमें तंबू और बिजली के ठेकेदारों को निपटाया जाना भी कठिन था। खरच की मदें तो सैकड़ों थीं और हर मद में हजारों-लाखों ही चुकाए जाने थे। चंदा करना नहीं था। कोई धनी-मानी भी साथ नहीं। अपनी गुंजाइश नहीं। निर्धारित पेटी को वे स्वयं ही खोलते-बंद करते रहते थे।

पेटी वह अब भी मौजूद है, पर उन दिनों तो उसने कुबेर के अक्षय भंडार का रूप धारण कर लिया था। सब कार्य सानंद हो गए। हजारों कर्मचारी, हजारों स्वयंसेवक व्यवस्था में जुटे रहे। किसी की एक सुई तक चोरी नहीं गई, किसी का सिर तक नहीं दु:खा, किसी को ठोकर तक नहीं लगी; जबकि इतने बड़े आयोजन में सहज ही दुर्घटनाएँ हो सकती हैं।

सरकारी अफसर हैजा आदि फूट पड़ने के भय से चिंतित थे। सूचना तो उन्हें थी, पर संभावना पर विश्वास न था सो वे कुछ प्रबंध भी न कर सके। यकायक प्रबंध हो भी नहीं सकता था। उनकी चिंता दूर करते हुए पूरा पक्का विश्वास यह दिलाया कि चिंता जरा भी न करें—उन्हें बदनाम न होना पड़ेगा, सो ही हुआ भी।

दर्शक यही कहते रहे, यह उनके जीवन का अनुपम दृश्य था। इतना बड़ा धर्मानुष्ठान वस्तुत: हजारों वर्षों से न देखा गया, न सुना गया। सर्वथा साधनहीन व्यक्ति द्वारा इतना बड़ा कार्य हो सकता है, सामान्य बुद्धि इसे किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकती, पर प्रत्यक्ष को क्या कहा जाए? जो सामने मौजूद था, जो आँखों ने देखा उससे इनकार कैसे किया जाए?

दृश्य आयोजन से भी बड़ी बातें यह थीं, जो अदृश्य रूप से चलती रहीं और जिनका स्वरूप और महत्त्व समझ सकना हर किसी के लिए सहज संभव भी नहीं है। सर्वथा अपरिचित लोगों को सम्मानित होने की प्रबल अंत:प्रेरणा और उनका अनेक कठिनाइयों के रहते हुए भी आ पहुँचना और आगंतुकों में कुछ दर्शकों को छोड़कर शेष का उच्च व्यक्तित्वसंपन्न स्तर का होना। यह एक अनोखापन ही है, इसका कोई प्रत्यक्ष आधार तलाश नहीं किया जा सकता।

चार लाख आगंतुक, दर्शकों की भीड़ उससे भी अधिक। इस जनसमुद्र में एक व्यक्ति क्या करे, क्या न करे? सो कुछ गुरुदेव को सूझा नहीं। वे प्रात: से सायंकाल तक आगंतुकों का अभिवादन करने के लिए एक तख्त पर खड़े रहते। मुझे भी उनके साथ खड़ा रहना पड़ता। बस, हम लोगों का इतना ही काम था।

पूरे पाँच दिन 5-5 चुल्लू गंगाजल पीकर हम लोगों ने उपवास किया और खड़े रहे। रात में नित्यकर्म। व्यक्तिगत संपर्क तो व्यवस्थापकों से भी न हो पा रहा था। फिर आगंतुकों से परामर्श की

बात तो संभव ही कहाँ थी ? आकर्षण का केंद्र बना एक व्यक्ति उस स्थिति में परामर्श तो क्या कुछ भी नहीं कर सकता था, लाखों आँखें उसी पर लगी थीं।

रिपोर्ट यह है कि आगंतुकों में से अधिकांश ने यह अनुभव किया कि आचार्य जी से उनकी व्यक्तिगत भेंट हुई, परामर्श हुआ और भावी रीति-नीति के संबंध में प्रेरणाएँ दी गईं। बुद्धि इस तथ्य को स्वीकार नहीं कर सकती, पर तथ्यों से भी इनकार कैसे किया जाए।

इसी अवसर पर बनी युग निर्माण योजना परिवार का संगठन उन्हीं पाँच दिनों में हुआ। 2400 यज्ञ आयोजनों द्वारा जनजाग्रति की व्यापक लहर उत्पन्न करने और शतसूत्री कार्यक्रमों को, युग निर्माण योजना को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व यहीं बाँटा गया।

यह हर दिन एक भाषण से संभव नहीं था। हरेक की योग्यता, मनोभूमि एवं परिस्थिति भिन्न है सो कोई भी भिन्न हो सकते हैं, इसके लिए व्यक्तिगत परामर्श के बिना काम नहीं चल सकता। यदि वह संभव न हुआ होता तो सहस्रकुंडीय यज्ञ आयोजन दूसरे लोगों के धर्मानुष्ठानों की तरह एक क्रिया-कृत्य मात्र रहकर समाप्त हो गया होता। एक महान क्रांति का शुभारंभ उससे कैसे होता ?

परामर्श करके और निर्देश लेकर ही वे आगंतुक वापस नहीं चले गए, वरन उन्होंने अपेक्षित तत्परता और निष्ठा के साथ काम भी किया। उसी का परिणाम है, जो अब बारह वर्ष बाद अपनी अनुपम गरिमा को प्रदर्शित कर रहा है। सचमुच वह आयोजन हर दृष्टि से ऐसा अद्भुत था कि जो देखा गया उसकी संगति मिलाने में बुद्धि चकराती है।

कितने ही जेबकटों और उचक्कों ने बताया कि वे सारे हिंदुस्तान से सैकड़ों की संख्या में अच्छी कमाई करने की आशा में आए थे, पर यहाँ उनके हाथ-पाँव बँध गए। मन ऐसा बदला कि उस धर्मानुष्ठान में दूसरों की तरह भावनापूर्वक संलग्न रहने के अतिरिक्त और कुछ उनसे बन ही नहीं पड़ा।

मार्ग में व्यय से अधिक जो उनके पास था, उसे दानपेटियों में डालकर खाली हाथ घर पहुँचे और वह धंधा एक प्रकार से सदा के लिए ही छूट गया।

उन्हीं स्मृतियों में से एक यह भी है कि जिनके सामान खो गए थे, गिर गए थे या गुम हो गए थे, वे उन्हें अपने घर पहुँचने पर मिल गए। इन सूचना देने वालों का कहना है कि हमने अपना सामान मथुरा में भली प्रकार देख लिया था कि कोई चीज कहीं इसी में उलझी, लिपटी तो नहीं है। फिर घर पहुँचने पर वे चीजें हमें यात्रा वाले बिस्तर या सामान में नहीं, उससे बाहर रखी मिलीं। इसका कारण क्या हो सकता है ? बौद्धिक कोई समाधान नहीं। मनगढंत बात लगती है, पर जिन्होंने कहा वे अविश्वस्त नहीं थे और न वे सूचनाएँ मुझे देने से उनका कोई स्वार्थ सिद्ध होता था।

इन घटनाओं की चर्चा पर जबकि प्रतिबंध लगा दिया गया था, तब तो उसकी अत्युक्तियाँ मनगढंत और भी निरर्थक हो जाती हैं। जो हो, उस आयोजन के साथ एक नहीं अनेक स्मृतियाँ ऐसी हैं, जिससे उसे अलौकिक या अतिमानवीय कहा जाए तो कुछ अत्युक्ति न होगी।

यहाँ चर्चा सहस्रकुंडीय यज्ञ की की गई है, पर एक नहीं गुरुदेव के सार्वजनिक जीवन की लोक-मंगल के लिए किए गए अनेक प्रयत्नों की अगणित कुंडीय क्या, प्रायः सभी घटनाएँ ऐसी हैं जिनकी सफलताएँ साधनविहीन स्थिति की तुलना करते हुए अवाक् कर देने वाली हैं।

► 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄

भविष्य में क्या किया जाने वाला है, उसकी कभी-कभी वे चर्चा करते हैं। रूपरेखा बताते हैं तो उसे बाहर का व्यक्ति सुनकर शेखचिल्ली की उड़ानें ही कह सकता है।

हनुमान के समुद्र लाँघने, अंगद के पैर जमाने, नल-नील के समुद्र पर पुल बाँधने, अगस्त्य के समुद्र सोखने जैसी योजनाएँ क्या सचमुच संभव हो सकती हैं, इस संदेह का आज कुछ उत्तर दिया जा सकना संभव नहीं। उसकी यथार्थता जानने के लिए कल की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। जिस महान सत्ता के साथ उनका अविच्छिन्न संबंध है, उसका महान अनुदान गुरुदेव की दुर्बल काया से कुछ भी करा सकता है। इस पर मुझे तो पूरा विश्वास है।

लोक-मंगल के लिए दिव्यसत्ता की चेष्टाएँ काम करती समझी जा सकें तो इस कठपुतली को नाचते देखकर किसी को भी न हैरत में पड़ने की जरूरत होगी, न अविश्वास करने की। ❑

एक बार भगवान महावीर ने राजा बिंबिसार के कर्मों का अवलोकन करने के पश्चात उनसे कहा—"राजन्! तुम्हारे पास भले ही अपार संपत्ति है, पर तुम्हारे पुण्य धीरे-धीरे चुक रहे हैं। उनके समाप्त हो जाने के बाद तो तुम्हें नरक जाना ही पड़ेगा।"

बिंबिसार को यह सुनकर रातभर नींद नहीं आई और वे सुबह होते ही भगवान महावीर के पास पहुँचे और उनसे बोले—"प्रभु! मुझे नरक न जाने का उपाय बताइए।" महावीर ने कहा—"राजन्! यदि तुम नरक जाने से बचना चाहते हो तो प्रसून नामक श्रावक के पास जाओ। उसके पास समत्व नामक फल है। उसका सेवन करके तुम नरक जाने से बच सकते हो।"

राजा बिंबिसार श्रावक प्रसून के पास पहुँचे और उनके सम्मुख अपना निवेदन रखा। प्रसून राजा की बात सुनकर मुस्कराए और बोले—"राजन्! समत्व कोई पेड़ पर लगने वाला फल नहीं है। समत्व तो मन के संतुलन और आंतरिक समता का प्रतिफल है।" राजा बोले—"तो मैं समत्व कैसे प्राप्त कर सकता हूँ ?" प्रसून ने उत्तर दिया—"जब तक आपका मन—धन, संपत्ति व प्रतिष्ठा में लगा हुआ है, तब तक आपको इनकी पूर्ति के लिए एवं इनकी अभिवृद्धि के लिए आंतरिक संतुष्टि को दाँव पर लगाना ही पड़ेगा। सत्ता और संपत्ति के अहंकार में आपके द्वारा कृत कुकर्म ही तो नरक का कारण बनते हैं।" प्रसून के शब्द सुनकर राजा बिंबिसार की आँखें खुल गईं और वे निरासक्त भाव से श्रेष्ठ कर्म करने में निरत हो गए तथा स्वर्गगामी हुए।

किशोर मन की सुकोमल भावनाएँ

किशोर मन संवेदनशील होता है। यह खिलते हुए पुष्प के समान है। अगर हम अपने मित्रों की तरह परिवार के लोगों को भी चुन सकते तो कितना सुखद होता। यह सिर्फ एक उक्ति नहीं, बल्कि सच्चाई है। खासतौर से जब किशोरावस्था में भाई-बहनों के बीच महत्त्वपूर्ण संबंध हो तो ऐसी स्थिति में किशोरों के मन में ऐसा ख्याल आना स्वाभाविक है; क्योंकि यह उम्र का ऐसा दौर है, जब किशोरों का कोमल मन छोटी-छोटी बातों से भी आहत हो उठता है और इसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर भी पड़ता है।

ज्यादातर मनोचिकित्सकों का ऐसा मानना है कि पिछले दस वर्षों के दौरान कई ऐसे मामले सामने आए, जो बहनों और भाइयों के बीच मनमुटाव, ईर्ष्या और हिंसा से संबंधित थे। लगातार पनप रहे आपसी तनाव ने किशोरों में आत्महत्या की प्रवृत्ति को भी बढ़ावा दिया है। किशोरों की इस समस्या के लिए अकेले अभिभावक ही नहीं, बल्कि हमारी पूरी सामाजिक व्यवस्था जिम्मेदार है।

सदियों से चले आ रहे कुछ पूर्वाग्रह भी इस समस्या के लिए जिम्मेदार हैं। मसलन अगर भाई-बहनों में झगड़ा हो तो हमेशा उसे ही डाँटा जाता है, जो बड़ा होता है। ऐसे में बड़े को लगता है कि काश! हम भी छोटे होते तो हमें भी डाँट नहीं पड़ती। हमें भी माता-पिता से ज्यादा प्रेम मिलता। मनोचिकित्सकों का मानना है, परिवारों में संवादहीनता की स्थिति ने भाई-बहनों के आपसी द्वेष को बढ़ावा दिया है।

कुछ सामाजिक रूढ़ियों के कारण माता-पिता बच्चों की तुलना अक्सर एकदूसरे से करने लगते हैं। प्रायः ऐसे मामले देखने में आते हैं, जिनमें बच्चा अपने रंग-रूप और योग्यता को लेकर कुंठा से पीड़ित होता है। अपने भाई या बहन से तुलना किए जाने के कारण ऐसे बच्चों का विकास नहीं हो पाता है। ऐसे में जरूरत इस बात की होती है कि परिवार में किशोर हो रहे बच्चों की भावनाओं को अभिभावक समझने की कोशिश करें और उन्हें भी खुलकर अपने मन की बातें कहने की स्वतंत्रता दें।

बहुधा ऐसा देखा जाता है कि दो बच्चों के बीच रंग-रूप, बुद्धिमत्ता और कैरियर को लेकर तुलना करने से उनमें कुंठा उत्पन्न होती है। किशोरों के लिए यह स्थिति खासतौर पर घातक है। फैशन और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव की वजह से किशोरों में अपने बाहरी व्यक्तित्व को सुंदर और आकर्षक बनाने की ललक पैदा हुई है। ऐसे में सामान्य शक्ल-सूरत वाले किशोरों के मन में हीन भावना पैदा हो जाती है। ऐसी स्थिति में क्षमा, धैर्य और प्यार से किशोर अपने भाई-बहनों की समस्याओं को समझकर उनका हल निकाल सकते हैं।

जरूरत है तो सिर्फ भावनात्मक सहयोग की, जो कि पूरे परिवार की तरफ से मिलना चाहिए। परिवार में दो किशोरों के बीच तनाव और ईर्ष्या-द्वेष की भावना विकसित न हो इसके लिए जरूरी है कि अभिभावक शुरू से ही उनके व्यवहार को नियंत्रित रखें और बच्चा समझकर उनकी गलतियों को अनदेखा न करें।

इस संबंध में समाजशास्त्री डॉ० नैन्सी का कहना है कि माता-पिता का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने बच्चों के सामने अपना व्यवहार भी शालीन

और संयत रखें; तभी वे माता-पिता का अनुसरण करते हुए अपने भाई-बहनों के साथ अच्छा व्यवहार करना सीखेंगे और उन्हें यह सीख घर पर ही दी जानी चाहिए।

एक ही माता-पिता की संतान होने और एक ही माहौल में परवरिश की वजह से भाई-बहनों के बीच प्यार का बंधन स्वत: मजबूत होता है, लेकिन इसी वजह से इनमें पारस्परिक प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या की भावना भी उत्पन्न होती है। यही ईर्ष्या आगे चलकर किशोरों में कुंठा को जन्म देती है। किशोर अपने भाई-बहनों के साथ भी दोस्ताना संबंध बना सकते हैं। जरूरत है तो सिर्फ उनके मार्गदर्शन की, जो कि माता-पिता ही दे सकते हैं। किशोरों को कुंठित बनाने में माता-पिता के नकारात्मक नजरिये की भी भूमिका होती है।

घर में माता-पिता का पहला कर्त्तव्य है कि वे अपने बच्चों की खूबियों और खामियों को पहचानें। स्कूल में शिक्षकों का दायित्व है कि वे सभी छात्रों को उनके व्यक्तित्व के अनुसार क्षमता विकसित करने की प्रेरणा दें। हाथ की पाँचों उँगलियाँ बराबर नहीं होतीं। ठीक उसी तरह एक ही घर में पल रहे भाई-बहनों का व्यक्तित्व एक जैसा नहीं हो सकता। अगर रंग-रूप या बौद्धिक क्षमता के आधार पर बच्चों के साथ भेदभाव किया जाए तो इससे न सिर्फ उनके व्यक्तित्व का विकास बाधित होता है, बल्कि धीरे-धीरे उनमें हीन भावना भी पनपने लगती है।

दूसरे की भावनाओं को समझना, इच्छाओं को जानना, समस्याओं को बताना और उनका हल ढूँढ़ना, भाई-बहनों के रिश्ते को जीवंत बनाए रखता है। पुराने जमाने में भाई-बहनों के बीच जो अपनत्व था, वह आज के एकल परिवार के हमउम्र भाई-बहनों के बीच देखने को नहीं मिलता। इसका मुख्य कारण आधुनिक समाज की व्यक्तिवादी मानसिकता है। ऐसी स्थिति में परिवार के सदस्यों की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि वे किशोरों को गलत रास्ते पर जाने से रोकें।

माता-पिता की यह जिम्मेदारी है कि वे सकारात्मक और सहयोगपूर्ण रवैये से अपने किशोरों को मानसिक रूप से संतुलित करने की चेष्टा करें। अगर घर में ही भेदभावपूर्ण वातावरण होगा तो इसके परिणामस्वरूप आगे चलकर किशोर समाज से भी अलग-थलग पड़ जाएगा।

दोस्तों की तुलना में भाई-बहनों में एकदूसरे को जानने और समझने की शक्ति भी अधिक होती है, पर किशोरों के आपसी संबंधों को बेहतर बनाने के लिए माता-पिता को भी सचेत तरीके से प्रयास करना चाहिए।

इसके लिए जरूरत है तो सिर्फ सकारात्मक सोच की, प्यार व स्नेह से किशोर का हाथ थामने की। तभी तो वह स्वयं को घर-परिवार व समाज में सुरक्षित महसूस करेगा। किशोरों में अनेक प्रकार की समस्याएँ जब बहुत ज्यादा बढ़ जाएँ तो उनके समाधान के लिए माता-पिता को मनोचिकित्सक की सलाह लेने में झिझकना नहीं चाहिए। उनके सही मार्गदर्शन से किशोरों की यह समस्या दूर हो सकती है।

साथ ही हम यह भी स्मरण रखें कि घर का वातावरण हम स्वयं ही तैयार करते हैं। इसलिए अपने परिवार के भीतर भी प्यार और सहयोग की भावना विकसित करके हम किशोरों में रिश्ते की मिठास को बरकरार रख सकते हैं। किशोरों के साथ अपनत्व और समझदारी के साथ पेश आना चाहिए। इसी माध्यम से उनका विश्वास जीता जा सकता है।

जब वे हम पर विश्वास करेंगे तो ही उनकी समस्याओं एवं विशेषताओं का समुचित निराकरण एवं विकास किया जा सकेगा। अतः हमें किशोरों का विश्वास अपनत्व एवं समझदारी के साथ जीतना चाहिए। □

अदृश्य हत्यारा है परमाणु विकिरण

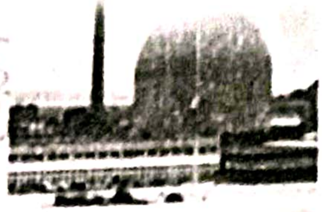

हवा भी अदृश्य है। तब भी हम उसका स्पर्श महसूस करते हैं, लेकिन रेडियोधर्मी परमाणु विकिरण एक ऐसा हत्यारा है, जो न दिखाई पड़ता है न सुनाई पड़ता है। न उसका कोई स्वाद है और न कोई गंध। हमारी ज्ञानेंद्रियों से परे है उसका स्पर्श। केवल विकिरणमापी यंत्र ही उसकी उपस्थिति को महसूस कर सकता है। यह बताता है कि उसकी तीव्रता खतरे के निशान से नीचे है या ऊपर।

कुछ परमाणु बिजलीघरों के रिएक्टरों में इस समय जो कुछ हो रहा है, उसने इसी कारण सारी दुनिया को चिंता और भय से एकसूत्र कर दिया है। हर चेहरे पर यही प्रश्न है क्या भारी मात्रा में विकिरण के उत्सर्जन को रोका जा सकेगा? क्या हमारे यहाँ भी विकिरण पहुँचेगा? पहुँचा तब क्या करना होगा? वह कैसे हमें मारेगा? कैसे हम अपना बचाव कर सकते हैं?

विषय के जानकार जर्मन विशेषज्ञ बेर्नर एक्कर्ट कहते हैं—परमाणु रिएक्टर रसोईघर की बत्ती नहीं, खाना पकाने की हॉटप्लेट के समान है। जिस तरह हॉटप्लेट बटन बंद कर देने के बाद भी कुछ समय तक गरम रहती है, उसी तरह परमाणु रिएक्टर भी बंद होने के बाद लंबे समय तक गरम भी रहता है और रेडियोधर्मी विकिरण भी पैदा करता है।

बटन बंद करने पर केवल इतना ही होता है कि उसके भीतर परमाणु विखंडन की सतत क्रिया(चेन रिएक्शन) थम जाती है। यह सतत क्रिया चलती है रिएक्टर के केंद्र में लगी परमाणु ईंधन की उन छड़ों में, जिनमें यूरेनियम या प्लूटोनियम भरा होता है। विखंडन की क्रिया शुरू करने के लिए उन पर न्यूट्रॉन कणों की बौछार की जाती है।

एक बार शुरू होने के बाद यह क्रिया अपने आप तभी आगे बढ़ सकती है और निरंतर चल सकती है, जब न्यूट्रॉन कणों की टक्कर से टूटने वाले यूरेनियम या प्लूटोनियम के हर नाभिक से एक और न्यूट्रॉन कण छिटके और वह एक और नाभिक को टक्कर मारे।

यदि ऐसा नहीं हुआ तो परमाणु विखंडन की क्रिया बार-बार रुक जाया करेगी, लेकिन वास्तव में होता यह है कि हर न्यूट्रॉन की टक्कर से यूरेनियम या प्लूटोनियम के हर नाभिक से एक ही नहीं, बल्कि दो या तीन न्यूट्रॉन कण छिटककर अलग होते हैं।

इसे रोकना पड़ता है अन्यथा सतत क्रिया नियंत्रण के बाहर हो जाएगी। रोकने के लिए ईंधन की छड़ों के बीच बोरोन या कैडमियम मिश्रित सामग्रियों वाली न्यूट्रॉन अवशोषक छड़ें नीचे उतारी जाती हैं। उन्हें रिएक्टर में जितना ज्यादा नीचे उतारा जाता है, उतने ही ज्यादा न्यूट्रॉनों को वे अपने भीतर सोख लेती हैं।

इस तरह सुनिश्चित किया जाता है कि रिएक्टर में उतने ही न्यूट्रॉन रहें, जितने नियंत्रित सतत क्रिया के लिए जरूरी हैं। रिएक्टर को बंद करने का मतलब है न्यूट्रॉन अवशोषक छड़ों को एकदम नीचे उतार देना, ताकि नाभिकीय विखंडन रुक जाए। नाभिकीय विखंडन की सतत क्रिया तो रुक

जाती है परंतु रिएक्टर बंद करते ही तुरंत ठंढा नहीं हो जाता।

बेर्नर एक्कर्ट के अनुसार बंद हो जाने के बाद भी परमाणु बिजलीघर अपनी अधिकतम क्षमता से 5 से 10% के बराबर बिजली पैदा करता है। यहाँ तक कि पूरी तरह चुक गई ईंधन छड़ों से भी करीब उतना ही रेडियोधर्मी विकिरण निकलता रहता है, जितना विशुद्ध रेडियम से निकलता है। जिन छड़ों का परमाणु ईंधन अभी-अभी चुक गया है, उनके भीतर अब भी इतना विखंडन पदार्थ हो सकता है कि उनमें न केवल अच्छा-खासा विकिरण ही पैदा हो रहा हो, बल्कि यह विकिरण इतना बढ़ भी सकता है कि रिएक्टर बंद होते हुए भी पिघलने लगे।

इसीलिए अपने यूरेनियम का प्लूटोनियम खरच कर चुकी छड़ें किसी कचरे के ढेर पर नहीं डाली जातीं, एक्कर्ट कहते हैं बल्कि उन्हें उनको ठंढा करने के लिए विशेष टेंकों में रखा जाता है। उन्हें बार-बार ठंढा करना पड़ता है, ताकि कुछ साल बाद उन्हें कैस्टर कहलाने वाले मजबूत कंटेनरों में पैक किया जा सके।

फिलहाल तो वे इन कंटेनरों में ही पड़ी रहती हैं, क्योंकि हमारे पास या किसी और देश के पास उनको अंतिम रूप से रखने का कोई स्थायी समाधान नहीं है। यह एक ऐसी समस्या है, जिसके समाधान के लिए त्वरित प्रयत्न करने की आवश्यकता है। ❑

राजा अश्विनीदत्त को अपने महल, धन-संपत्ति व रानी से अत्यंत मोह था। उनका यह मोह शनैः-शनैः बढ़ता जा रहा था और इस कारण उन्होंने राजकार्य पर ध्यान देना बंद कर दिया था। यह देखकर प्रधानमंत्री बहुत परेशान हुए और वे अपनी चिंता कुलगुरु संत नागानंद के समक्ष रखने पहुँचे। मंत्री के अनुरोध पर कुलगुरु राजा से मिलने राजमहल आए। राजा ने उनका भव्य स्वागत किया। उन्हें अनेकानेक उपहार भी भेंट किए। प्रत्युत्तर में कुलगुरु ने राजा को एक कमल का पुष्प भेंट किया और उनसे कहा—"राजन्! तुम्हारा उपहार कमल की पंखड़ियों के भीतर है।"

राजा ने कमल की पंखड़ियाँ हटाईं तो उन्हें वहाँ एक भौंरा मरा दिखाई पड़ा। वे कुलगुरु के इस उपहार का अर्थ समझ नहीं पाए। उनकी उत्सुकता को भाँपकर कुलगुरु बोले—"राजन्! यह साधारण भौंरा नहीं है, यह राजभौंरा है। राजभौंरे में इतनी सामर्थ्य होती है कि वह चाहे तो कठोर लकड़ी को छेदकर निकल जाए, परंतु वही भौंरा कमल पर आसक्त हो जाता है तो उसकी पंखड़ियों के मध्य फँसकर अपनी जान गँवा बैठता है।" राजा को कुलगुरु का कथन समझ में आ गया और वे मोह छोड़कर प्रजापालन-कर्त्तव्य में जुट गए।

कौटिल्य का प्रशासनिक चिंतन

एक सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य ने अपने सामूहिक और सार्वजनिक जीवन को संतुलित, अनुशासित और विकसित बनाने के लिए अनेक तरह की व्यवस्थाओं का निर्माण किया है। इन्हीं में से एक महत्त्वपूर्ण व्यवस्था है—शासन-प्रशासन की। राजनीतिक तथा लोकतांत्रिक मर्यादाओं को कुशलतापूर्वक पालन करने-कराने में शासन-प्रशासन-व्यवस्था की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

इस व्यवस्था का प्राचीन एवं प्रारंभिक रूप वैदिककाल में ही प्राप्त होता है। समूचे वैदिक वाङ्मय में राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था से संबंधित विस्तृत व्याख्याएँ प्राप्त होती हैं। रामायण, महाभारत और पुराण ग्रंथों में तो ये व्याख्याएँ और भी ज्यादा व्यापक और विस्तृत रूप में मौजूद हैं।

मानवीय जीवन एवं समाज की निरंतर परिवर्तनशीलता तथा गतिशीलता को आधार बनाकर भारतीय ऋषि-मनीषियों ने प्राचीनकाल से लेकर अब तक अपने-अपने समय में शासन-प्रशासन से संबंधित विचारों को प्रस्तुत किया है। शुक्र नीतिसार, विदुर नीति, कौटिल्य अर्थशास्त्र, नीति कर्णामृत, नीति वाक्यामृत, राजनीति रत्नाकर आदि ग्रंथों में राज्य के शासन और उसकी प्रशासनिक संस्थाओं के स्वरूप की विस्तृत चर्चा मौजूद है।

इन शास्त्रों-ग्रंथों में वर्णित कुछ तत्त्व काल क्रम विकास में अप्रासंगिक हो जाने के पश्चात भी अधिकांश सूत्र और सिद्धांत वर्तमान में भी अत्यंत उपादेयी और प्रासंगिक प्रतीत होते हैं।

मौजूदा प्रशासन-व्यवस्था में व्याप्त विसंगतियों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि हम अपनी प्रशासन संबंधी प्राचीन विरासत का अवगाहन करें और उनके आदर्श सिद्धांतों को आधार बनाकर वर्तमान की प्रशासन-व्यवस्था की समस्याओं का समाधान खोज निकालें।

इस दिशा में पहल करते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्राच्य अध्ययन विभाग के अंतर्गत लोक प्रशासन विषय में एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य संपन्न किया गया है। यह शोध अध्ययन वर्ष-2021 में शोधार्थी अश्वनी कुमार द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० चिन्मय पण्ड्या जी के कुशल निर्देशन में पूर्ण किया गया है।

शोध अध्ययन का शीर्षक है—**'वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कौटिल्य का प्रशासनिक चिंतन।'** सैद्धांतिक एवं विवेचनात्मक विधि पर आधृत इस अध्ययन कार्य को कुल छह अध्यायों में वर्गीकृत कर प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम अध्याय **'कौटिल्य एवं कौटिल्य अर्थशास्त्र का सामान्य परिचय'** है। इसके अंतर्गत शोध विषय की पृष्ठभूमि आचार्य कौटिल्य का व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा उनका प्रसिद्ध ग्रंथ अर्थशास्त्र के संदर्भ में विस्तृत विवेचन किया गया है। शोध अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य लोक प्रशासन के स्वरूप एवं महत्त्व को भी सामने लाना है।

वर्तमान स्थिति में दुनिया वैश्वीकरण की ओर तीव्रता से बढ़ रही है, ऐसे में लोक प्रशासन का जो भी स्वरूप व संरचना है, उसमें भी समयानुकूल परिवर्तन एवं संवर्द्धन आवश्यक है। वस्तुतः लोक प्रशासन का मूल उद्देश्य प्रत्येक देश-काल में

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

समान रहता है। यह उद्देश्य है— राष्ट्र के कल्याण को ध्यान में रखते हुए राष्ट्र के सांस्कृतिक, नैतिक, सामाजिक व नागरिक मूल्यों की रक्षा करना तथा जनसामान्य में सतत इन मूल्यों का संवर्द्धन एवं विकास करना।

लोक प्रशासन के उक्त उद्देश्य की पूर्ति कैसे संभव हो, इसके लिए भारत में अनेक मूल्यवान ग्रंथों की रचना हुई है, इन्हीं ग्रंथों में से एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ कौटिल्य का अर्थशास्त्र है। यह राजनीतिशास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

इसकी रचना भारतीय इतिहास के मौर्य साम्राज्य के प्रसिद्ध आचार्य कौटिल्य द्वारा की गई है, इसलिए इसे कौटिल्य अर्थशास्त्र भी कहा जाता है। कौटिल्य को ही चाणक्य और विष्णुगुप्त नाम से भी अभिहित किया जाता है। इनका काल लगभग 321 ईसा पूर्व का माना जाता है।

अर्थशास्त्र का सामान्य अर्थ धन अथवा संपत्ति का अध्ययन है, परंतु भारतीय आर्ष ग्रंथों में इसका अर्थ अत्यंत व्यापक है। यहाँ प्राचीन मनीषियों द्वारा अर्थशास्त्र के अंतर्गत ही समस्त नीतियाँ, व्यवस्थाएँ एवं अनुशासनों का उल्लेख किया गया है।

कौटिल्य के ग्रंथ में भी विभिन्न विषयों का समावेश है, लेकिन लोक प्रशासन, राजनीति और शासन-प्रशासन के संचालन की कुशलता का व्यापक वर्णन किया गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कुल 15 अधिकरण, 180 प्रकरण एवं 6000 श्लोक हैं, जिनमें राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, नीति, शिक्षा जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का समावेश है।

द्वितीय अध्याय है—**'कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित शासन-प्रणाली।'** अध्ययन के इस सोपान में प्रशासन-व्यवस्था के उद्भव, अर्थ एवं परिभाषा का विवेचन करते हुए कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित शासन-प्रणाली को प्रस्तुत किया गया है। प्रशासन-प्रणाली का उद्भव राजा और राजतंत्र की शुरुआत के साथ ही हो गया था।

राजा और उसके मंत्री, सलाहकार आदि शासन-व्यवस्था के अंग होते थे तथा सभा, समितियाँ, परिषद् आदि प्रशासन तंत्र के रूप में कार्य करते थे। वेदों में सभा-समितियों आदि का विस्तृत उल्लेख है। वैदिककालीन राजतंत्र में सभा और समिति का सर्वोच्च स्थान था। कालचक्र के साथ इनमें आवश्यक परिवर्तन होता गया और इनका स्वरूप भी बदल गया।

आचार्य कौटिल्य ने अपने समय में शासन प्रणाली के लिए राज्य के सप्तांगों का उल्लेख किया है। ये सात हैं—स्वामी, आमात्य, जनपद, दुर्ग, कोश, दंड और मित्र। इन सातों अंगों को कौटिल्य ने प्रकृति की संज्ञा दी है तथा इनमें परस्पर की एकता को महत्त्वपूर्ण माना है।

उनके ग्रंथ में राज्य, राजा, आमात्य, मंत्री, पुरोहित, कर्मचारी, दूत, चर (गुप्तचर), कोश, न्याय-प्रणाली, राष्ट्र, दुर्ग आदि शासन-प्रशासन प्रणाली के महत्त्वपूर्ण पहलुओं का विस्तृत वर्णन किया है। इनकी योग्यता, अधिकार, कर्त्तव्य और स्वरूप का वर्णन उस काल की सुदृढ़ प्रशासन-व्यवस्था की स्थिति को दरसाता है।

शोध का तृतीय अध्याय है—**'वर्तमान शासन-प्रशासन प्रणाली।'** इसके अंतर्गत वर्तमान संदर्भ में भारत देश की संवैधानिक कार्यपालिका, वास्तविक कार्यपालिका, भारतीय संघ की न्यायपालिका तथा राज्य की कार्यपालिका की संरचना एवं स्वरूपों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

वर्तमान भारत में लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली मौजूद है, जो 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र होने तथा 26 जनवरी, 1950 को गणराज्य के रूप में अपना संविधान लागू करने से प्रारंभ हुई है।

भारत की समस्त व्यवस्थाएँ इसी संविधान के अनुसार संचालित होती हैं। शासन-व्यवस्था के सुचारु संचालन हेतु संसदीय प्रणाली को अपनाया गया है।

इस संसदीय प्रणाली में केंद्रीय स्तर पर राष्ट्रपति (संवैधानिक कार्यपालक) तथा प्रधानमंत्री (वास्तविक कार्यपालक) होते हैं। इसी प्रकार राज्य स्तर पर राज्यपाल (संवैधानिक कार्यपालक) और मुख्यमंत्री (वास्तविक कार्यपालक) होते हैं। यहाँ की प्रशासन-व्यवस्था भी इसी अनुरूप विकसित की गई है। इस अध्याय में भारतीय शासन-प्रशासन के पाँच प्रमुख अंगों का विस्तृत वर्णन किया गया है। ये पाँच अंग हैं—

1. भारत की संवैधानिक कार्यपालिका—इसमें राष्ट्रपति सर्वोच्च होता है।

2. भारत की वास्तविक कार्यपालिका—इसमें प्रधानमंत्री और मंत्रि परिषद् आते हैं।

3.संघीय व्यवस्थापिका—जिसमें लोकसभा और राज्यसभा कार्य करते हैं।

4. भारत की संघीय न्यायपालिका—जिसमें सर्वोच्च न्यायालय तथा प्रत्येक राज्य में उच्च न्यायालय कार्य करते हैं। और

5. राज्य की कार्यपालिका—राज्यपाल, मुख्यमंत्री और मंत्रि परिषद्।

चतुर्थ अध्याय है—'**वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कौटिल्य की सुरक्षा-व्यवस्था**।' इस सोपान में आचार्य कौटिल्य की सुरक्षा नीति, वर्तमान की सुरक्षा-व्यवस्था तथा कौटिल्य की सुरक्षा-व्यवस्था के उपादेयी पक्षों की विवेचना प्रस्तुत की गई है। राष्ट्र की एकता, विकास एवं निर्माणकारी तत्त्वों की दृष्टि से आचार्य कौटिल्य की सुरक्षा नीति अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

इसके अंतर्गत राष्ट्र की आंतरिक सुरक्षा की नीतियों, बाहरी राष्ट्रों में से मित्रराष्ट्र व शत्रुराष्ट्र को चिह्नित कर उनके अनुरूप अलग-अलग नीतियों का वर्णन किया गया है। इसमें राजदूतों की नियुक्तियों, अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों को आचार्य ने महत्त्वपूर्ण बताया है। इसी प्रकार गुप्तचर और सेना-सैन्य संगठन की नीतियों पर भी उन्होंने अत्यंत महत्त्व दिया है।

वर्तमान भारत की सुरक्षा-व्यवस्था में प्रजातांत्रिक मूल्यों के संवर्द्धन एवं सुरक्षा के लिए एक व्यापक तंत्र कार्य करता है। इस सुरक्षा-व्यवस्था में थलसेना, नौसेना, वायुसेना और अन्य सेना के मुख्यालय, प्रशिक्षण केंद्र, सेना के उपकरण, गुप्तचर व्यवस्था तथा परमाणुशक्ति-व्यवस्था व रक्षा-उत्पादन और रक्षा तंत्र से जुड़े अनुसंधान केंद्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

आचार्य कौटिल्य की सुरक्षा नीतियों और सुरक्षा-व्यवस्था के अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत व विचार वर्तमान की भारतीय सुरक्षा-व्यवस्था प्रणाली में समाहित दिखाई देते हैं, परंतु समय एवं परिस्थितियों के मूल्यांकन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान की सुरक्षा-प्रणाली को और अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए कौटिल्य अर्थशास्त्र की नीतियों में से अनेक उपादेयी तत्त्वों को ग्रहण किया जा सकता है।

अध्ययन का पंचम अध्याय है—'**वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कौटिल्य की सामाजिक व्यवस्था एवं पर-राष्ट्रनीति**।' कौटिल्य अर्थशास्त्र में वर्णित समाज-व्यवस्था में वर्ण, आश्रम और धर्मतंत्र का अत्यंत महत्त्व था; जिनका प्रभाव उनकी नीतियों पर भी दिखाई पड़ता है, परंतु यह भी उल्लेखनीय है कि उन्होंने अपने समय की कुप्रथाओं-कुरीतियों को समाप्त कर समाज में धर्म, नैतिकता और सदाचार की स्थापना को अपनी नीतियों में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया।

उनके ये विचार सामाजिक कल्याण एवं विकास की दृष्टि से उस काल की भाँति वर्तमान में भी प्रासंगिक हैं। समाज के प्रत्येक वर्ग के कार्य,

नैतिक एवं सामाजिक अनुशासन व दंड-व्यवस्था का अर्थशास्त्र में विस्तृत वर्णन मिलता है। राष्ट्र एवं समाज की समृद्धि एवं उन्नति के लिए आचार्य कौटिल्य ने अर्थोपार्जन के महत्त्व और उपायों तथा सुरक्षा के लिए सैन्य संगठन पर व्यापक प्रकाश डाला है।

राष्ट्र की शांति के लिए पर-राष्ट्र नीति को भी कौटिल्य महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इसके लिए उन्होंने चतुर्वर्ग व षड्वर्ग नीति का वर्णन किया है। चतुर्वर्ग हैं—साम, दाम, दंड, भेद तथा षड्वर्ग हैं—संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव व संश्रय।

इस अध्याय में शोधार्थी ने इनका विस्तृत विवेचन किया है। इसके साथ ही वर्तमान संदर्भ में कौटिल्य अर्थशास्त्र की मूल्यवान नीतियों के उपादेयी पहलुओं को भी इसमें रेखांकित किया गया है।

अंतिम अध्याय है—'**वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रशासकीय चिंतक एवं कौटिल्य**।' इस अध्याय में पं० जवाहरलाल नेहरू, स्वामी विवेकानंद तथा परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी के प्रशासनिक चिंतन की कौटिल्य के विचारों के संदर्भ में मूल्यांकनपरक विवेचना प्रस्तुत की गई है।

पं० नेहरू के चिंतन पर कौटिल्य के राष्ट्रवाद की भावना का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। वे राष्ट्र के लिए संसदीय प्रणाली को उपयुक्त मानते थे। यह भेद अवश्य है कि कौटिल्य काल में राज्य की शक्ति को राजा की शक्ति से जोड़कर देखा जाता था, परंतु पं० नेहरू के विचारों में राष्ट्र की अंतिम सत्ता प्रजा के हाथों में होना ही उत्तम माना गया है, परंतु कौटिल्य के विचारों की व्यापकता के अनेक पक्ष पं० नेहरू के चिंतन पर स्पष्ट दिखाई देते हैं।

स्वामी विवेकानंद का राष्ट्रवाद नेहरू से भिन्न आध्यात्मिक आधारों पर आधृत है, अतः स्वामी जी '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' की भावना को समाहित करते हुए भारतीय राष्ट्र की गौरव-गरिमा की प्रस्तुति करते हैं। कर्म, परिश्रम, चरित्र और आत्मिक अनुशासन को भी वे राष्ट्रीय एवं सामाजिक शासन-प्रशासन की प्रणालियों में महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव के विचार भी आध्यात्मिक सिद्धांतों पर आधृत हैं। कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनेक आदर्श सिद्धांत, पूज्य गुरुदेव की नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रांति तथा उनके विचार-क्रांति अभियान में सम्मिलित देखे जा सकते हैं। युगनिर्माण सत्संकल्प के अठारह सूत्र उनके मूल्यवान चिंतन की व्यापकता को समझने हेतु पर्याप्त मार्गदर्शन करते हैं। इन सूत्रों को आदर्श प्रशासन के सिद्धांतों के पर्याय के रूप में भी देखा जा सकता है।

यह भी ध्यान रखने योग्य है कि विवेकानंद और पूज्य गुरुदेव ने संपूर्ण मानवता के लिए विचार दिए हैं, किसी एक राष्ट्र को केंद्र में रखकर नहीं। इस दृष्टि से भारतराष्ट्र के साथ-साथ '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' और विश्वराष्ट्र की परिकल्पना ने इन महापुरुषों के प्रशासनिक चिंतन को उदात्त, सार्वभौमिक एवं एक व्यापक स्वरूप प्रदान किया है।

अध्ययन के अंतिम भाग में '**उपसंहार**' के अंतर्गत सभी अध्यायों का सारांश प्रस्तुत करते हुए शोध के निष्कर्ष, महत्त्व एवं उपादेयी पहलुओं की विवेचना की गई है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्राचीन नीति-नियमों का समावेश और आधुनिक संभावनाओं की प्रतिपूर्ति करने वाले सूत्र मौजूद हैं, जिन्हें इस अध्ययन में स्पष्टता से उजागर किया गया है।

इन विचारों के आलोक में वर्तमान शासन-प्रशासन व्यवस्था की विसंगतियों की पहचान एवं उनके समाधान के उपायों पर सहज रूप से विचार किया जा सकता है। □

सद्भाव व साधुभाव के साथ करें कर्म

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की चौबीसवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के पच्चीसवें श्लोक पर चर्चा विगत किस्त में की गई थी। इस श्लोक में भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि 'तत्' नाम से कहे जाने वाले परमात्मा के लिए ही सब कुछ है—ऐसा मानकर मुक्ति चाहने वाले मनुष्यों द्वारा फल की इच्छा से रहित होकर अनेक प्रकार की यज्ञ और तपरूप क्रियाएँ तथा दानरूप क्रियाएँ की जाती हैं। भगवान के द्वारा ऐसा कहने के पीछे दो कारण हैं—पहला, यह संसार परिवर्तनशील एवं नाशवान है। इस नष्ट होने वाले संसार में अविनाशी सत्ता तो मात्र शुद्ध, चैतन्य, निर्विकार परमात्मा की ही है; क्योंकि वे ही अजर, अमर, अविनाशी हैं और हमारी क्रियाओं का केंद्र ऐसी ही चेतना हो सकती है, अन्य नहीं।

इसके साथ ही ऐसा कहने के पीछे दूसरा कारण यह है कि समस्त कर्मों को ईश्वर को अर्पण कर देने से ही निरहंकारिता एवं निष्कामता विकसित हो पाती हैं। इस नाशवान संसार को अनित्य मानना ही अविद्या का मूल कारण है, इसलिए भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि एकमात्र परमात्मा की प्राप्ति का उद्देश्य अंतःकरण में धारण करके समस्त कर्मों को निष्काम भाव से उन्हें अर्पण कर देने से सत्य का साक्षात्कार हो पाता है।]

श्रीभगवान इसके बाद अगला सूत्र कहते हैं कि

सद्भावे साधुभावे च, सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥ *26*॥

शब्दविग्रह- सद्भावे, साधुभावे, च, सत्, इति, एतत्, प्रयुज्यते, प्रशस्ते, कर्मणि, तथा, सत्, शब्दः, पार्थ, युज्यते।

शब्दार्थ—'सत्' (**सत्**), इस प्रकार (**इति**), यह (परमात्मा का नाम)(**एतत्**), सत्य भाव में (**सद्भावे**), और (**च**), श्रेष्ठ भाव में (**साधुभावे**), प्रयोग किया जाता है (**प्रयुज्यते**), तथा (**तथा**), हे पार्थ! (**पार्थ**), उत्तम (**प्रशस्ते**), कर्म में (भी)(**कर्मणि**), 'सत्' (**सत्**), शब्द का (**शब्दः**), प्रयोग किया जाता है (**युज्यते**)।

अर्थात हे पार्थ! 'सत्' यह परमात्मा का नाम सत्तामात्र में और श्रेष्ठ भाव में प्रयोग किया जाता है तथा प्रशंसनीय कर्म के साथ 'सत्' शब्द जोड़ा जाता है। परमात्मा की सत्ता का नाम ही सत् भाव या सद्भाव है।

कोई परमात्मा को साकार रूप में अनुभव कर सकता है तो कोई निराकार में, किसी के लिए उनका रूप सगुण है तो किसी के लिए निर्गुण; फिर धर्म, पंथ, संप्रदाय के अनुरूप उनका नाम, रूप इत्यादि भिन्न हो जाते हैं, परंतु सद्भाव में उनके स्वरूप को सत् मानते हुए सभी कुछ उसी एक स्वरूप के अंतर्गत माना गया है।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

इसी तरह भगवान कहते हैं कि परमात्मा का 'सत्' स्वरूप—उनकी सत्ता की उपस्थिति के रूप में, सद्भाव के रूप में प्रयुक्त होता है तथा साधु भाव अर्थात श्रेष्ठ गुणों यथा दया, करुणा, क्षमा, कल्याण आदि भावों के रूप में प्रयुक्त होता है।

इसी विचार को आगे बढ़ाते हुए भगवान कहते हैं कि '**प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते**' अर्थात परमात्मा की प्राप्ति के लिए अलग-अलग मत-संप्रदायों में जितने साधन बताए गए हैं, जैसे दान, धार्मिक अनुष्ठान इत्यादि वे सब प्रशंसनीय, श्रेष्ठ कर्म भी परमात्मा के इसी 'सत्' रूप की अभिव्यक्ति हैं।

इससे विगत श्लोक में भगवान ने 'तत्' शब्द का अभिप्राय स्पष्ट किया था तो वहीं, वे इस श्लोक में 'सत्' शब्द का अर्थ स्पष्ट कर रहे हैं। यहाँ भगवान कहते हैं कि इस नाशवान संसार में जो अविनाशी सत्ता है—उस शाश्वत परमात्मा के होने का अभिप्राय, उसकी सत्ता की उपस्थिति का प्रमाण ही यह 'सत्' भाव है।

इसी के साथ श्रेष्ठ–उत्कृष्ट गुणों की उपस्थिति, साधुभाव की उपस्थिति भी उनके 'सत्' स्वरूप का ही वर्णन है।

सारांश में यहाँ भगवान कह रहे हैं कि जो भी साधक परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग के पथिक हैं, उनके कर्म सत्यमय भी होने चाहिए एवं मंगलकारी, कल्याणकारी एवं पवित्र भी होने चाहिए। साथ ही ऐसा कर्म प्रशंसनीय और सुव्यवस्थित भी होना चाहिए, तभी वो परमात्मा की प्राप्ति का साधन बन पाता है।

यदि ऐसा न होता तो दान इत्यादि धार्मिक अनुष्ठान तो दैत्य–दानव भी करते हैं, तब भी उनके कर्मों का भाव पवित्र, कल्याणकारी न होने के कारण, सुखद परिणामों को नहीं ला पाता है।

इसी गीता में श्रीभगवान ने पहले कहा भी है कि असत् भाव के साथ किए गए प्रशंसनीय कर्मों के कारण यदि कोई ब्रह्मलोक भी चला जाए तो भी उसे वहाँ से लौटना ही पड़ता है—'**आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन**।' और वहीं ईश्वर के प्रति कर्मों को अर्पण करके जीवन जीने वाले कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होते—'**न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति**' (गीता 6/40) क्योंकि उनके कर्मों का भाव सदा सद्भाव वाला एवं साधुभाव वाला होता है। ऐसे कर्म ही प्रशंसनीय व उत्कृष्ट होते हैं। (क्रमशः)

स्वामी रामकृष्ण परमहंस से उनके शिष्य ने पूछा—"ज्ञान क्या है, अज्ञान क्या है और विज्ञान क्या है?"

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने उत्तर दिया—"अनेक को जानने का नाम है—अज्ञान और एक को जानने का नाम है— ज्ञान। अर्थात एक ही ईश्वर सत्य है और सर्व भूतों में विराजमान है—ऐसा बोध ज्ञान कहलाता है। उनके साथ बातचीत करने का नाम है विज्ञान—उन्हें प्राप्त कर अनेक प्रकार से उन्हें प्यार करने का नाम है—विज्ञान।"

वसुधैव कुटुम्बकम् की आधारशिला है विश्वविद्यालय

लगभग शताब्दी पूर्व पूज्य गुरुदेव द्वारा वसुधैव कुटुम्बकम् की संकल्पना की गई व साथ ही इसे पूर्ण करने हेतु विधिवत् योजना भी युगसाहित्य के माध्यम से जनसामान्य से साझा की गई थी।

स्वयं उन्हीं के कहे अनुसार कि आने वाले समय में कारणस्वरूप विचारों के माध्यम से वे प्रबुद्ध वर्ग को न केवल प्रभावित करेंगे, वरन उक्त वर्ग को दैवी योजना को अंजाम देने के लिए अभिप्रेरित करेंगे; को आज हम सभी भारत सरकार द्वारा इस वर्ष आयोजित किए गए जी–20 समिट आयोजन के माध्यम से देख सकते हैं। जैसे कि इसमें पूज्यवर का ही हस्तक्षेप हो और वे ही इस माध्यम से भारत के गौरव को वैश्विक पटल पर लाने का प्रयास कर रहे हों।

हाल ही में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में जी–20 समिट की थीम 'वसुधैव कुटुम्बकम्' विषय पर व्याख्यानमाला कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस अवसर पर श्री मुक्तेश कुमार परदेशी, माननीय सचिव, विदेश मंत्रालय एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति श्री शरद पारधी, प्रतिकुलपति जी ने कार्यक्रम का शुभारंभ संयुक्त रूप से किया।

इसके पश्चात कुलगीत एवं प्रेरणागीत में संगीतकारों ने वसुधैव कुटुम्बकम् के भाव को झंकृत किया। व्याख्यानमाला कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री परदेशी जी ने कहा कि विगत दिनों में भारत के अलग–अलग शहरों में जी–20 समिट के कार्यक्रम हुए, इससे विश्व के नेताओं ने भारत की प्राचीन संस्कृति एवं आधुनिक सोच को बारीकी से जाना। सभी नेताओं ने स्वीकार किया कि भारत अब जगद्गुरु बनने की दिशा में मजबूती के साथ आगे बढ़ रहा है।

वरिष्ठ राजनयिक श्री परदेशी जी ने कहा कि भारत जिस तरह युवापीढ़ी की प्रतिभा को विकसित करने और अवसर प्रदान करने की योजना पर कार्य कर रहा है, यह एक दूरगामी परिणाम देने वाला प्रयास है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय सच्चे अर्थों में भारतीय संस्कृति की जड़ों से जुड़कर अपने वैश्विक विस्तार के साथ वसुधैव कुटुम्बकम् को सच्चे अर्थों में जी रहा है।

कार्यक्रम की भूमिका बनाते हुए देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने कहा कि भारत में संत कबीर, गुरुनानक देव, स्वामी विवेकानंद, अहिल्या बाई होल्कर जैसी अनेक दिव्यात्माओं ने जन्म लिया और भारत–को–भारत बनाने में अपनी तप–साधना के एक–एक अंश की आहुतियाँ दीं। यह परिवर्तन का समय है। भारत अब जाग रहा है। मनुष्य में सत्प्रवृत्तियों रूपी देवत्व का उदय होने लगा है।

व्याख्यानमाला के समापन के अवसर पर कुलपति श्री पारधी जी ने सभी का आभार प्रकट किया। इस अवसर पर प्रतिकुलपति जी ने मुख्य अतिथि श्री परदेशी जी को इस युग के श्रीराम द्वारा लिखित जीवनोपयोगी साहित्य, गंगाजल, सद्बुद्धि की अधिष्ठात्री माँ गायत्री का चित्र आदि भेंटकर सम्मानित किया।

भारत की एकता एवं अखंडता के सूत्रधार लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल की पावन जयंती को राष्ट्रीय एकता दिवस के रूप में मनाया गया। इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय में रन फॉर यूनिटी का आयोजन किया गया। रन फॉर यूनिटी आयोजन में कुलपति जी, प्रतिकुलपति जी, समस्त आचार्यगण, अधिकारीगण एवं छात्र-छात्राओं ने प्रतिभाग किया।

देशभक्ति के गीत/प्रज्ञागीत गाकर एवं जयघोष लगाकर देश के मान-सम्मान को कायम रखने हेतु उपस्थित लोगों द्वारा शपथ भी ली गई। ज्ञात हो कि इससे पूर्व विश्वविद्यालय परिसर में राष्ट्रीय एकता दिवस पर निबंध लेखन, दीवाल लेखन, स्वरचित कवितापाठ एवं वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया।

अखंड दीपक शताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में तीन दिवसीय दक्षिण भारतीय सक्रिय कार्यकर्त्ता सम्मेलन का आयोजन भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय में किया गया।

इस सम्मेलन के समापन के अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में रामानुजम् संप्रदाय के आध्यात्मिक प्रमुख श्रद्धेय त्रिदंडी श्रीमन्ननारायण रामानुजम् चिन्ना जीयर स्वामी जी एवं विशिष्ट उद्बोधन हेतु पशुपालन डेयरी, उत्तराखंड शासन के सचिव डॉ० बी० आर० सी० पुरुषोत्तम का आगमन हुआ।

कार्यक्रम का शुभारंभ परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी के समक्ष दीप प्रज्वलन कर किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने सभी मंचस्थ अतिथियों का स्वागत किया।

श्रद्धेय त्रिदंडी स्वामी जी ने अपने मुख्य उद्बोधन में स्वार्थ शब्द को परिभाषित करते हुए कहा कि मैं गायत्री परिवार के पारमार्थिक भाव से प्रभावित हूँ और इसलिए हूँ कि गायत्री परिवार के इस भाव में वसुधैव कुटुंबकम् निहित है। उन्होंने अपने मुख्य उद्बोधन के पश्चात देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर का भ्रमण कर चल रही गतिविधियों की प्रशंसा की।

इस सम्मेलन में शांतिकुंज जोन समन्वक, कुलसचिव जी, शांतिकुंज के परिजन, दक्षिण भारत से आए सभी परिजन, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के समस्त आचार्यगण, अधिकारीगण एवं विद्यार्थी उपस्थित रहे।

अंतरराष्ट्रीय एनिमेशन दिवस के अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के एनिमेशन विभाग के विद्यार्थियों द्वारा विभिन्न प्रकार की रचनात्मक कलाकृतियों, रंगोली इत्यादि का प्रस्तुतीकरण किया गया। प्रतिभाग करने वाले सभी विद्यार्थियों का प्रतिकुलपति जी ने उत्साहवर्द्धन किया व आगे बढ़ने के लिए शुभकामनाएँ दीं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार एवं राष्ट्रीय जल विज्ञान संस्थान, रुड़की के तत्त्वावधान में स्वच्छता ही सेवा स्पेशल कैम्पेन 3.0 के अंतर्गत 'कचरामुक्त भारत' विषय पर पर्यावरण विज्ञान विभाग के द्वारा एक जनजागरूकता कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

इस कार्यक्रम में उपस्थित राष्ट्रीय जल विज्ञान संस्थान के वरिष्ठ वैज्ञानिक डॉ० एल० एन० ठकराल जी ने बढ़ते हुए कचरे के प्रति अपनी चिंता जाहिर की और बताया कि कचरामुक्त भारत करने के लिए युवाओं का आगे आना एवं इसी के साथ-साथ सभी की प्रतिभागिता भी कचरे को कम करने में जरूरी है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलसचिव जी ने युवाओं से आवाहन किया और कहा कि नदियाँ एक जलस्रोत ही नहीं, अपितु संपूर्ण भारत की जीवनरेखा हैं। इनको बचाया जाना बहुत जरूरी है। इस दिशा में गायत्री परिवार गोमुख से गंगासागर

तक गंगा को बचाने के लिए प्रयासरत है। कार्यक्रम के अंत में आयोजकों द्वारा सभी प्रतिभागियों का धन्यवाद ज्ञापन किया गया।

विजयादशमी के पावन अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय में रामलीला का मंचन एवं रावण दहन का कार्यक्रम मनाया गया। इस कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में कुलपति जी, प्रतिकुलपति जी एवं शेफाली जीजी का आगमन हुआ। रामलीला मंचन के कार्यक्रम से पूर्व देव संस्कृति विश्वविद्यालय में व्यसनमुक्त भारत बनाने हेतु एक रैली निकाली गई। रैली के माध्यम से भारत व्यसनमुक्त कैसे हो—इसको लेकर नशामुक्ति पर आधारित नुक्कड़ नाटक एवं प्रज्ञागीत के माध्यम से लोगों को जागरूक किया गया।

पर्यटन विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान में दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। सम्मेलन का उद्घाटन समारोह देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलपति जी, प्रतिकुलपति जी एवं कुलसचिव जी की उपस्थित में संपन्न हुआ। इसके मुख्य अतिथि उत्तराखंड के अपर सचिव श्री सी० रविशंकर एवं महाकौशल विश्वविद्यालय के कुलाधिपति एवं स्वामी विवेकानंद विश्वविद्यालय सागर, मध्यप्रदेश के कुलपति श्री अनिल तिवारी थे।

इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य पौराणिक, ऐतिहासिक एवं आध्यात्मिक पर्यटन क्षेत्रों के संरक्षण एवं पर्यावरण विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर्यटन के मध्य संतुलन जैसे विषयों पर चर्चा करना था। इस कार्यक्रम में अनेक महाविद्यालयों एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के सदस्य उपस्थित रहे।

विश्व मानसिक स्वास्थ्य दिवस के अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय में तीन दिवसीय विशेष कार्यशाला का आयोजन किया गया। मनोविज्ञान विभाग द्वारा आयोजित इस कार्यशाला में लोगों को मानसिक स्वास्थ्य के महत्त्व एवं मानसिक बीमारियों के बारे में विभिन्न प्रकार की जानकारियाँ प्रदान की गईं। इस विशेष कार्यशाला के समापन के अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में प्रतिकुलपति जी एवं संकायाध्यक्ष श्री संदीप श्रीवास्तव पधारे।

प्रतिकुलपति जी ने कहा कि मानसिक संतुलन बिगड़ना एक प्रकार का विकार है, जिसका प्रभाव तीव्रगति से बढ़ता जा रहा है। ऐसे में मानसिक स्वास्थ्य की सही देख-भाल व्यक्ति को खुश और समृद्ध जीवन जीने में मदद करती है। सभी लोगों को अपने शारीरिक स्वास्थ्य की तरह से मानसिक स्वास्थ्य का ध्यान भी रखना चाहिए। दोनों स्वास्थ्य एकदूसरे पर निर्भर होते हैं। कार्यक्रम के अंत में प्रतिकुलपति जी ने प्रतिभागियों को पुरस्कृत किया। कार्यक्रम का समापन विभाग द्वारा समस्त विशिष्ट अतिथियों को धन्यवाद ज्ञापित कर, सोशल मीडिया के नए पेज का विमोचन शांतिपाठ के माध्यम से किया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं कोटद्वार स्थित डॉ० पीतांबर दत्त बर्थवाल सरकारी पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज के मध्य संयुक्त अनुसंधान और विकास परियोजनाओं पर कार्य हेतु एक अनुबंध पर भी हस्ताक्षर किया गया है। इस अनुबंध का उद्देश्य शिक्षा और अनुसंधान के विभिन्न क्षेत्रों को बढ़ावा देना है। इसके तहत दोनों संस्थानों के संयुक्त तत्त्वावधान में शोधकार्य एवं परियोजना को स्थापित करना और शोधार्थियों का आदान-प्रदान एवं विद्यार्थियों और तकनीकी कर्मचारियों सहित वाणिज्यिक अनुसंधान परियोजनाओं को बढ़ावा देना है।

विभूतियों के देव संस्कृति विश्वविद्यालय आगमन के क्रम में उत्तर प्रदेश के सिकंदराबाद से विधायक श्री लक्ष्मीराज सिंह का आगमन व

प्रतिकुलपति जी से भेंट हुई। इस अवसर पर उन्हें पूज्य गुरुदेव का साहित्य भेंट किया गया। श्रीराम जन्मभूमि तीर्थ-क्षेत्र के ट्रस्टी एवं पेजावर मठ के पीठाधिपति जगद्गुरु स्वामी विश्वप्रसन्न तीर्थ जी का भी विश्वविद्यालय में आगमन व प्रतिकुलपति जी से भेंट हुई। स्वामी जी की प्रभु श्रीराम मंदिर की प्राणप्रतिष्ठा हेतु विशेष चर्चा हुई।

इसके अतिरिक्त देव संस्कृति विश्वविद्यालय में राजर्षि सम्मान से सम्मानित एवं स्मार्ट ग्रुप ऑफ कंपनीज के संस्थापक-अध्यक्ष, भूपेंद्र कुमार मोदी जी का आगमन व प्रतिकुलपति जी से भेंट हुई। प्रतिकुलपति जी ने उन्हें गायत्री तीर्थ, शांतिकुंज एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय की सृजनात्मक गतिविधियों से परिचित कराया साथ ही पूज्य गुरुदेव का साहित्य भी भेंट किया।

इटली स्थित सेंट्रो स्टडी भक्तिवेदांता संस्था का एक दल हाल ही में देव संस्कृति विश्वविद्यालय पहुँचा। भारतीय प्राच्य विद्या में अभिरुचि रखने वाली इस संस्था से प्रोफेसर फाबियो टूटी के नेतृत्व में इस दल ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से भेंट की एवं विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों से सांस्कृतिक संवाद भी किया।

संस्कृत एवं वेदाध्ययन विभाग, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने उत्तराखंड संस्कृत अकादमी, हरिद्वार द्वारा आयोजित खंडस्तरीय प्रतियोगिता में अपना परचम लहराया। प्रतियोगिता में विद्यार्थियों ने समूहगान प्रतियोगिता में द्वितीय स्थान प्राप्त किया। इस अवसर पर विद्यार्थियों का उत्साहवर्द्धन करते हुए प्रतिकुलपति जी ने आशीर्वाद प्रदान किया।

काशी हिंदू विश्वविद्यालय, आई०आई०टी० कानपुर, आईयूसीटीई बनारस द्वारा दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस आयोजन में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुल 33 छात्र-छात्राओं ने 16 शोधपत्रों के साथ प्रतिभाग किया। जिसमें सभी प्रतिभागियों ने सर्वश्रेष्ठ शोधपत्र वाचन का पुरस्कार प्राप्त किया। प्रतिकुलपति जी ने सभी प्रतिभागियों का उत्साहवर्द्धन करते हुए भविष्य में नए आयामों तक पहुँचने के लिए शुभकामनाएँ दीं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में लोकप्रिय कवि एवं पद्मश्री श्री सुनील जोगी जी का भी आगमन हुआ व प्रतिकुलपति जी से भेंट हुई।

जर्मनी से भी 20 लोगों के एक समूह का भी आगमन व प्रतिकुलपति जी से भेंट एवं मार्गदर्शन का क्रम संपन्न हुआ। जर्मनी के इस समूह का आगमन विशेषकर भारतीय संस्कृति, योग, यज्ञ एवं वैज्ञानिक अध्यात्मवाद को जानने एवं समझने हेतु हुआ था। ❑

नया युग तेजी से बढ़ता चला जा रहा है। उसे कोई रोक न सकेगा। प्राचीनकाल की महान परंपराओं की पुनः प्रतिष्ठा होनी है। महाकाल उसके लिए आवश्यक व्यवस्था बना रहे हैं और तदनुकूल आधार उत्पन्न कर रहे हैं। युग का परिवर्तन अवश्यंभावी है। हमारा छोटा-सा जीवन इसी की घोषणा करने, सूचना देने के लिए है। जिस काम के लिए हम आए थे, पूरा होने को है। अगला काम महाकाल स्वयं करेंगे। उनकी प्रेरणा से एक से बढ़कर एक प्रतिभाशाली और प्रबुद्ध आत्माएँ सामने आएँगी। वे एकता, समता, शुचिता की मंगलमयी परिस्थितियों का शुभारंभ कर इस धरती पर स्वर्ग का वातावरण संभव कर दिखाएँगी।

—परमपूज्य गुरुदेव

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

विषम परिस्थितियों में हमारे दायित्व

(उत्तरार्द्ध)

परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों की यह मौलिकता है कि न केवल वे सर्वग्राह्य भाषा में गूढ़ चिंतनों को सभी श्रोताओं के सम्मुख रखती हैं, वरन वे सभी साधकों-परिजनों को उनके दायित्वों का निर्वहन करने के लिए पुकारती भी हैं। अपने इस प्रस्तुत उद्बोधन में न केवल वे विषम परिस्थितियों में हमें हमारे दायित्वों का निर्धारण करने के लिए चेताती हैं, वरन हर साधक को यह भी स्मरण दिलाती हैं कि मनुष्य जीवन का सौभाग्य नारकीय प्रवृत्तियों को त्यागने के बाद ही जग पाता है। वे कहती हैं कि वर्तमान परिस्थितियाँ अत्यंत भीषण, विषम एवं चुनौतीपूर्ण हैं और ऐसे में गायत्री परिजनों का, विशेष रूप से साधकों का दायित्व गुरुतर हो जाता है। हर साधक को न केवल पूज्य गुरुदेव से जुड़ने की एवं उन्हें अपने अंतस् में प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है, वरन अपने मन में उस भाव को गहराने की भी आवश्यकता है; जिससे शिष्यत्व का भाव और गंभीरता के साथ निखरकर आता है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.......

स्वर्ग का आनंद

युधिष्ठिर के लिए यह कहा गया कि चलिए आप तो स्वर्ग के लिए निहित हैं। उन्होंने कहा कि मेरे परिवारीजन कहाँ गए, मेरे कुटुंबी कहाँ गए? उन्होंने कहा—वे तो सब नरक में हैं। उन्होंने कहा—मैं भी वहीं चलूँगा, नरक में ही चलूँगा। जहाँ मेरे कुटुंबी हैं; जहाँ मेरे परिजन हैं; वहीं मुझको आप ले चलिए, मैं वहीं स्वर्ग का आनंद पा लूँगा। उनका स्वर्ग वहीं हो गया था।

जिनके अंदर ये भावनाएँ होती हैं, वो सब कुछ कर सकते हैं और जिसकी भावना ही सो गई है, जिसकी आस्था ही डगमगा गई है, जिसकी निष्ठा ही डगमगा गई है, जिसकी श्रद्धा ही नहीं है, वह व्यक्ति तो जिंदा होते हुए भी मुरदे के समान है। आप बुरा मत मानना। किसी को कोई बात खटकती हो तो खटके, मैं क्या करूँ? मेरे तो आप बच्चे हैं, बच्चे हैं, तो मैं तो खुलकर कहूँगी। बेटे! मुझे कहना चाहिए और मेरा अधिकार भी है। यदि आप प्यार से मानें तो बड़ी अच्छी बात है।

कल मैं लड़कों से कह रही थी कि देखो भाई, अभी आप नहीं मानेंगे, तो कोई समय आएगा, जब हम नहीं रहेंगे, तो फिर आपको पछताना पड़ेगा। अभी तो हम हैं। यों तो हम इसी मिट्टी में विद्यमान रहेंगे, कहीं जाएँगे नहीं।

हम शांतिकुंज में सदा रहेंगे

बेटे! हम तो शांतिकुंज में ही रहेंगे। आप देखना, मरकर भी हम शांतिकुंज में ही रहेंगे। शरीर ही तो मरेगा, आत्मा तो नहीं मरती है। फिर आपको यही प्रेरणा और यही शांति और संतोष मिलता चला जाएगा और जब आप गड़बड़ी फैलाएँगे तब

बेटे! फिर देख लेना, हम और गुरुजी दोनों आएँगे और एक देगा इस गाल पर और दूसरा देगा उस गाल पर। दोनों तुम्हारे कान उखाड़ेंगे और फिर तुम जब चारपाई से उठोगे न, अरे क्या हो गया?

गुरुजी-माताजी आ गए, भूत आ गया। अभी तो आप प्रणाम करते हैं, पाँव छूते हैं और कितने भावविभोर हैं और तब? तब बेटा! जिधर को जाएगा, उधर ही गुरुजी-माताजी दिखाई पड़ेंगे और अगर न माने, तू देख लेना, अभी से आजमाना शुरू कर देना।

अच्छा, जब हम मरें और भूत बनकर डराने आवें, तो इससे अच्छा है कि हम जिंदा ही आपको डराएँगे। आप देख लेना डराते हैं कि नहीं डराते हैं। बेटे! आपसे यह निवेदन है कि समय और परिस्थितियों की, देश और काल की महती आवश्यकता है कि हमारे प्रत्येक परिजन को आगे की पंक्ति में आना चाहिए।

बुद्ध के समय में दुर्भिक्ष फैल रहा था, तो एक कन्या उठी। उसने कहा—"पितामह! आप मुझे आज्ञा दीजिए, जो कार्य सब मिलकर नहीं कर सके, मैं करूँगी।" उन्होंने कहा—"बेटी! तू जरा-सी बच्ची है। तेरे अंदर वह हिम्मत, वह साहस है कि तू कर पाएगी? इतना अन्न जुटा पाएगी?"

उसने कहा—"पितामह! आपकी शक्ति और मेरा पुरुषार्थ और मेरा संकल्प बल, देखिए चमत्कार करता है कि नहीं करता?" चमत्कार क्या होता है, यह हम करके दिखाएँगे। बालिका उठी और उसने अन्न एकत्रित किया।

आप पढ़ना, यह एक सत्य कहानी है। यह वह कहानी है, जो कि प्रत्येक मुरदे में जान डालने वाली है कि एक नन्हीं-सी बालिका इतना साहस कर सकती है और हम नहीं कर सकते हैं? आखिर क्यों नहीं कर सकते हैं?

हमारी कमजोरी—संकीर्णता

क्या कमजोरी है? एक ही कमजोरी है और वो है संकीर्णता। संकीर्णता हमारा पीछा नहीं छोड़ती। संकीर्णता यदि हमारा पीछा छोड़ दे, तो कितने काम के हैं। बेटे! न मालूम आप में से कौन क्या बन सकता है? आपको कल्पना नहीं है, हमको कल्पना है कि न मालूम, आप से लेकर के आगे आने वाली पीढ़ी से लेकर के न मालूम कौन क्या बन सकता है? अभी आपका क्या बिगड़ा है? थोड़े-से ही मुझे ऐसे दिख रहे हैं, इनके बाल सफेद हो गए हैं, बाकी के सब हट्टे-कट्टे जवान दिखाई पड़ रहे हैं। न मालूम आप में से कौन क्या बन सकता है; न मालूम आप में से कौन गांधी बन सकता है; न मालूम आप में से कौन विनोबा बन सकता है; न मालूम आप में से कौन क्या बन सकते हैं? लेकिन अपनी संकीर्णताओं को तो आप छोड़िए न।

एक प्रख्यात व्यक्ति को पुत्रशोक में व्याकुल होते देखकर एक शिष्य ने अपने गुरु से पूछा—"गुरुवर! ऐसा क्यों? ये तो इतने बड़े ज्ञानी पुरुष कहे जाते हैं, फिर इनको इतना शोक क्यों?"

संत ने उत्तर दिया—"वत्स! ज्ञान भी तो अज्ञान के अभाव से निकलकर आया है। जहाँ ज्ञान है, वहीं अज्ञान है। जहाँ आलोक है, वहीं अंधकार भी। जहाँ सुख है, वहाँ दुःख भी है। जिसे भले का बोध है, उसे बुरे का भी। इसीलिए उपनिषद् में ऋषि कहते हैं कि तुम दोनों से परे चले जाओ, सुख-दुःख से परे चले जाओ, यही सत्य है।"

उनको तो यहीं छोड़ जाइए, आप शांतिकुंज में ही उनका दमन कर जाइए। बुराइयों को, संकीर्णता को छोड़ करके जाइए और सहृदयता लेकर के जाइए; प्यार लेकर के जाइए; स्नेह लेकर के जाइए; दुलार लेकर के जाइए; उदारता लेकर के जाइए और सर्वत्र सारे समाज में आप फैल जाइए।

आपसे है अपेक्षा

हमको आपसे बहुत अपेक्षा है। जितनी आपको हमसे अपेक्षा है कि हमसे बड़े हैं, हमारे गुरुजी हैं, माताजी हैं, इनका आशीर्वाद मिलेगा, इनकी प्रेरणा मिलेगी, हम खुशहाल होंगे। जो भी आपको हमसे अपेक्षाएँ हैं, बेटे! हमको भी आपसे अपेक्षाएँ हैं। बेटे! इस हाथ दे, उस हाथ से ले। नहीं साहब! लेंगे-ही-लेंगे। लेंगे-ही-लेंगे, तो अगले जन्म में तू कौन बनेगा?

अगले जन्म में रहने दे, मैं कुछ नहीं कहती कि क्या बनेगा? पर अगले जन्म में तुम गधे बनो और हम तुम्हें चलाते रहें। नहीं, तुम गधे मत बनो। आप देना भी सीखिए, एक हाथ से लीजिए, तो दूसरे हाथ से दीजिए। तो क्या दें—रुपया-पैसा दें? नहीं, रुपये-पैसे की कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान ने बहुत दिया है और देता रहेगा। तुम्हारे सामने क्यों हाथ फैलाएँगे? हम उस भगवान के सामने नहीं फैलाएँगे, जिसने सारे कार्य पूरे किए हैं।

आपको मालूम होना चाहिए कि गुरुजी ने कितने-कितने बड़े कदम उठाए हैं और वह कैसे पूरे होते चले आए हैं? हजारकुंडीय यज्ञ से लेकर के जो सन् 1958 में हुआ था, जिसमें एक लड़का बैठा था। कल बता रहा था कि माताजी मैं सन् 58 का हूँ।

मैंने कहा—बेटा! तब तो तू छोटा-सा होगा? हाँ, माताजी तब मैं छोटा-सा था। देखा था न कितनी भीड़ थी? मथुरा से लेकर वृंदावन तक सारी भीड़-ही-भीड़ दिखाई पड़ती थी। कितने टेंट लगे हुए थे और कितनी व्यवस्था थी। तो उन्होंने जो काम हाथ में लिया है, संकल्प लिया है, उसको पूरा किया है। चाहे जितने विरोधियों ने विरोध किया हो। विरोधियों की कोई जरा भी चिंता नहीं है।

आलोचनाओं को तिलांजलि दें

नर और नारी को जब उन्होंने बराबरी पर खड़ा किया और कहा कि हम इन्हें यज्ञोपवीत देंगे, हम यज्ञ पर बैठाएँगे। बेटे! वे सनातनी थे, तो उस हिसाब से वे करते थे और आर्यसमाजी थे, तो उन्होंने उस हिसाब से किया। हमेशा विरोध किया। उन्होंने कहा वाह! मूर्ति-पूजा करते हैं, तो कौन-सा बुरा काम करते हैं? बता पहले? और तुम जो कर रहे हो, किसी को तुम नहीं मानते? दयानंद को नहीं मानते? दयानंद की फोटो है कि नहीं है? हम भी मानते हैं।

बेटे! हमारे बुजुर्ग मानते हैं, संत मानते हैं, नतमस्तक होते हैं। फिर कौन-सी ऐसी बात है? काट, काट हर समय काट के अलावा कुछ नहीं आता, पर उन्होंने कभी किसी की परवाह नहीं की। आनंद स्वामी आते थे।

आनंद स्वामी, गुरुजी के पाँव छुआ करते थे और गुरुजी कहते थे कि नहीं, स्वामी जी आप बड़े हैं, हम आपको प्रणाम करेंगे। उन्होंने कहा कि नहीं, मेरे हाथ मत रोको। मैं आचार्य श्रीराम शर्मा को नहीं, मैं प्रणाम कर रहा हूँ उस शक्ति को, जो आपके अंदर दिव्यता है, उस दिव्यता को प्रणाम कर रहा हूँ। जो कार्य हम सब नहीं कर पाए और आप उस कार्य को कर रहे हैं।

बेटे! ऐसे तो कोई विरले होते हैं और आलोचना करने वाले हजारों मिल जाएँगे। आलोचनाओं की तरफ हम देखेंगे क्या? आलोचनाओं की तरफ जिस किसी ने भी मुड़कर देखा, उसने कोई अच्छा काम नहीं किया। कर ही नहीं सकता, क्योंकि

पग-पग पर जटिलताएँ खड़ी हैं। फिर आप कर पाएँगे? नहीं, कर पाएँगे। उन सबको तिलांजलि देते हुए चले जाइए।

बेटे! हाथी एक तरफ चलता है न। हाथी चलता है, तो सारी भीड़ तितर-बितर हो जाती है। आप कौन हैं? आप हैं—हाथी। और आप कौन हैं? मछली हैं। कौन-सी मछली? जो समुद्र में चलती है और छरछराती हुई अपना रास्ता बना लेती है। आप अपना रास्ता स्वयं बनाइए। स्वयं नहीं बनाएँगे, तो बेटे! आज आपने एक गाना सुना था कि नहीं? मुझे बहुत अच्छा लगता है और चाहे जब उस गाने की दो कड़ी मुझे याद आ जाती हैं, तो मेरे आँसू आ जाते हैं।

कौन-सा? सहारे तो सहारे हैं, किसी दिन टूट जाएँगे, किनारे तो किनारे हैं, किसी दिन छूट जाएँगे। ये साथ देने वाले हमारा साथ नहीं दे सकते। कब तक साथ देंगे? हमारी भुजाएँ, हमारा आत्मबल, हमारे पाँव यदि ठीक हैं, तो हम चल सकते हैं। हमारी आँखें ठीक हैं, तो हम दूर तक का दृश्य देख सकते हैं। यदि हम अंधे हो जाएँ तब? तब बेटे! हाथ पकड़कर दूसरा ले जाएगा।

आप देख पाएँगे? बिलकुल देख नहीं पाएँगे। कान, कान यदि सुनना बंद कर दें, तो चाहे आपकी रेडियो की आवाज हो, चाहे आपकी टीवी की आवाज हो, चाहे अच्छा संगीत हो, चाहे अच्छा प्रवचन हो, क्या सुन सकेंगे? नहीं, सुन सकेंगे। हमारा शरीर साथ देता है, तो ही हमारे सब सहयोगी बन सकते हैं। हमारे अंदर यदि आत्मबल है और हम आगे की पंक्ति में खड़े हो सकते हैं, तो आप सही मानना कि आपके साथ-साथ भीड़ चलने लगेगी।

दूसरों को श्रेय दीजिए

जरा-जरा से बच्चों को हम भेजते हैं, शक्ति तो हमारी ही होती है; लेकिन यह चोंगे का काम करते हैं। उस दिन एक व्यक्ति आया, तो कुछ ऐसा ही कहने लगा।

मैंने कहा—देखिए, यहाँ जो भी कुछ आपको दिखाई पड़ता है, ये सब उन्हीं का है। तो हम सब कौन हैं? चोंगे हैं। अपने-अपने ढंग से प्रतिपादित कर देते हैं। बस, बाकी का तो सब इन्हीं का है। इसी शब्द में आप समझ लीजिए, इंटरव्यू यहाँ मत लीजिए।

मैंने कहा—हम यहाँ इंटरव्यू कभी नहीं देते हैं। टीवी वालों ने कहा कि साहब! लड़के बैठे हैं, वे आएँगे और माताजी का इंटरव्यू लेंगे और गुरुजी का इंटरव्यू लेंगे और फिर टीवी पर दिखाएँगे। नहीं, हमको बिलकुल नापसंद है। हम टीवी पर आना ही नहीं चाहते। काहे को लाना चाहते हो? हम पेपरों में छपाना ही नहीं चाहते, हमें कोई तारीफ चाहिए ही नहीं। तारीफ हमें चाहिए, तो आप कोशिश कीजिए। जब हमको

गुरुकुल के विद्यार्थियों में एक विषय पर बहस छिड़ गई कि क्या श्रेष्ठ है? ज्ञान, सत्य, विवेक अथवा संयम? सब अपनी-अपनी जिज्ञासा लेकर गुरु के पास पहुँचे।

गुरु शिष्यों को संबोधित करते हुए बोले—"वत्स! इनमें से किसी का एकांगी महत्त्व नहीं है। ज्ञान के सहारे मनुष्य दूसरों को सत्पथ दिखा पाता है, सत्य के सहारे स्वयं तथा दूसरों को शांति दे पाता है, विवेक के सहारे सुखी बनता है, सुख प्रदान करता है और संयम बरतने पर दीर्घजीवी होता है तथा समस्त संपदाओं का सम्यक उपयोग कर पाता है।"

तारीफ चाहिए ही नहीं, हम तो पीछे की पंक्ति में खड़े होने वालों में से हैं। अब तक हमको तारीफ की ही चाहत रही होती, तो जाने कहाँ-से-कहाँ होते और जाने कितना हमने छपाया होता और कितने प्रशंसक आ गए होते।

हाँ, हमारी बहुत पहुँच है और हम कर सकते थे; लेकिन नहीं, हमने कभी नहीं किया। यदि आपको सम्मान पाना है, यदि आपको दूसरों की भावना पानी है, तो आप पीछे की पंक्ति में रहिए। श्रेय दूसरों को दीजिए।

दूसरों को आप श्रेय नहीं दे सके, आप खुद ही वाहवाही के हकदार बने रहे, तो फिर आप कुछ नहीं कर सकेंगे। न कुछ कर सकेंगे और न उनकी श्रद्धा को पा सकेंगे। पा भी नहीं सकेंगे, क्योंकि आपने दिया नहीं है। दूसरों को दीजिए न, सम्मान दीजिए, ताकि आपका भी सम्मान हो; दूसरों को प्यार दीजिए, ताकि आपको भी प्यार मिले।

विषम परिस्थितियों में दायित्व

मैंने आपको थोड़े-से समय में यह निवेदन किया कि अब सारे संसार के ऊपर जो विषम परिस्थितियाँ हैं—राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय आपको मालूम है कि किस तेजी से भयानकता हमारे देश में आती हुई चली जा रही है। आपको नहीं मालूम है? लड़ाई-झगड़े से लेकर और अन्य-अन्य जो समस्याएँ हैं, मार-काट से लेकर के और प्रलय तक।

कैसी प्रलय, आपको नहीं मालूम है? कहीं गाड़ियाँ टकरा रही हैं, कहीं भूचाल आ रहा है, कहीं क्या आ रहा है, कहीं क्या आ रहा है? ये विषम परिस्थितियाँ हैं और विषम परिस्थितियों में प्रत्येक बुद्धिजीवी का कर्त्तव्य है कि उन परिस्थितियों के साथ तालमेल बैठाना और विपरीत परिस्थितियों को हटाना। विपरीत परिस्थितियों को हटाना आपका कार्य है। वह मैंने एक-आध का उदाहरण दिया था, बाकी का तो हमारे कार्यकर्त्ता बताएँगे।

बेटे। ये जो रचनात्मक कार्य हैं, ये तो सब यही बताते रहते हैं, मैं आपको क्या बताऊँ। यह कहूँ कि दीपयज्ञ करो, अरे तो बाबा ये हैं तो सही, ये किस मतलब की दवा हैं, ये बता रहे हैं और पुरश्चरण कराओ, दो घंटे का कार्यक्रम शाखाओं में चलाओ, ये तो यही बता रहे हैं कि हर रविवार के दिन आपको चलाना चाहिए, तो चलाइए।

मैं इसमें क्या कहूँगी? जो और कह रहे हैं, वही बात मैं कहूँ, तो यह क्या बात हुई? मेरा तो जो विशुद्ध पक्ष है, वह बेटे! भावनात्मक है; वह है—आस्था और वह है—निष्ठा; वह है—श्रद्धा। आपकी श्रद्धा बनी रही तो आप सब कुछ करने में समर्थ होंगे, आपकी श्रद्धा नहीं रही तो आप कुछ भी नहीं कर सकेंगे।

यह मन की विदाई नहीं है

आज आपकी विदाई है, बेटे! विदाई में और तो हम क्या कहें? आप बहुत प्यारे बच्चे हैं, आपको हम शरीरों से विदाई दे रहे हैं, मन से नहीं। बेटे! मन से बालक कहाँ जाएगा? मन से तो बालक अपनी माँ की गोद में खेलेगा, अपनी माँ के आँगन में खेलेगा और अपनी माँ के हृदय में रहेगा। वह कहाँ जाएगा? माँ को, पिता को छोड़कर कोई बच्चा नहीं जाना चाहता; लेकिन कर्त्तव्य के लिए और रोजी-रोटी के लिए और जिस उद्देश्य से हम चाहते हैं, वह तो आपको वहीं पूरा करना पड़ेगा। उसके लिए हम शरीर-से आपको विदाई दे रहे हैं। मन-से नहीं, मन-से तो हम प्रत्येक बच्चे के हृदय में विराजमान हैं।

बेटे! भूलना मत। बेटे! मैंने एक शब्द यह कहा था कि पाँच मिनट की आपकी उपासना है।

वह उपासना है—शांतिकुंज आपका आना। जिस कदर आप आए हैं, वह आपकी दैनिक उपासना होनी चाहिए। यह कि हम शांतिकुंज गए और शांतिकुंज की हमने परिक्रमा की और ऊपर गए और हमने गायत्री माता को प्रणाम किया, अखंड दीपक को प्रणाम किया। जिस अखंड दीपक से गुरुजी ने प्रकाश पाया है और 24-24 लक्ष के 24 पुरश्चरण किए हैं।

बेटे! वह हमारा सिद्ध दीपक अभी भी प्रज्वलित है और हमेशा-हमेशा बना रहेगा। जब तक यह शांतिकुंज है और शांतिकुंज के निवासी हैं, तब तक रहेगा। तो उससे यह माँगिए कि हमको तो प्रकाश ही चाहिए, हमको और वरदान नहीं चाहिए। हमको हौसला चाहिए, हमको ताकत चाहिए, जिससे कि जो गुरुजी ने किया है। उसमें हम भी कुछ हिस्सेदार बनें और हम भी देश के काम आएँ, हम भी राष्ट्र के काम आएँ और समाज के काम आएँ। अपने कुटुंब और परिवार को पालने में हम समर्थ बनें, इनका मनोबल बढ़ाएँ, इनको आगे बढ़ाएँ।

नारी नहीं देवी

बेटे! नारियों को भी आप आगे बढ़ाइए। आपकी अपनी पत्नी है, उसको आगे बढ़ाइए। अब वह समय चला गया, जब हम नारी को हेय दृष्टि से समझा करते थे। समझने को तो अभी भी समझ रहे हैं। नहीं, नहीं समझना चाहिए। यह देवी है।

जब इसके पूर्व का वह स्वरूप देखेंगे, जब यह अपने माँ-बाप को छोड़कर आई थी, अपने भाई को छोड़कर के आई थी, यह त्याग की मूर्ति है, तो इसकी अनेक अच्छाइयाँ आपको मालूम पड़ेंगी।

जब बुराइयाँ ढूँढ़ने निकलेंगे, तब तो अनेक बुराइयाँ-ही-बुराइयाँ निकलती चली आएँगी। इसमें यह कमी है, इसमें यह कमी है, यह कटु बोलती है, यह करती है—हजार कमियाँ-ही-कमियाँ निकलती चली आएँगी और जब आप अच्छाइयाँ देखेंगे, तो यह अच्छाइयों की मूर्ति है। इसको आगे बढ़ाएँ; ताकि आपका कुटुंब और परिवार संस्कारी बन सके। कुटुंब और परिवार को संस्कारी कौन बनाएगा? माँ बनाती है और जब माँ—नारी की दशा ऐसी ही बनी रही और वो भावनात्मक दृष्टि से ऊँची नहीं उठी, तो फिर कौन बनाएगा?

शिक्षा की दृष्टि से ऊँची उठ जाए, तो उठ जाए। केवल शिक्षा किस काम में आती है? नौकरी के काम आती है, सर्टिफिकेट जो आते हैं, नौकरी के काम आते हैं। संस्कार और भावनाएँ, आस्था और श्रद्धा? ये तो आप पैदा नहीं कर पा रहे हैं। नौकरी-नौकरी कहने से। अरे, नौकरी थोड़ी मिल जाएगी, उसमें गुजारा हो जाएगा। कोई भूखा नहीं रहता है और जहाँ फजूलखर्ची करते फिरेंगे, तो रावण, सुरसा जैसा मुँह फाड़े वह कभी पूरा नहीं होता है। नारी को आगे बढ़ाइए; ताकि आपका कुटुंब और परिवार स्वर्ग जैसा बन सके।

बेटे! हम तो स्वर्ग में निवास करते हैं। गुरुजी ने मुझे समतुल्य खड़ा कर दिया है। शिक्षा में तो मैं नहीं कहती हूँ, बाकी का उन्होंने अपने बराबर खड़ा कर दिया है, बराबर से भी ज्यादा हो गया। प्रत्येक व्यक्ति जो आता है, मुझसे मिलता हुआ चला जाता है। बताइए गुरुजी के पास मिलता है? कोई नहीं मिलता। क्यों? उन्होंने मुझे अपने समतुल्य बना दिया है।

यदि उन्होंने नहीं बनाया होता, तो आज जिस स्थिति में हम हैं, वह नहीं होते। हरेक कोई मिलने आता है। अन्यथा नहीं साहब! माताजी तो लाज के मारे भीतर बैठी हैं। फिर मिलने आता कोई? नहीं। फिर मैं इतने बड़े कुटुंब को सँभाल पाती? नहीं,

सँभाल पाती। एक धक्का लगता तो सब तिलमिला जाते। नहीं बेटे! उन्होंने मुझे बना दिया है।

इसी तरीके से आप भी अपने घर में ये परंपराएँ डालिए, उनको आगे बढ़ने दीजिए; ताकि वे आपका दायाँ-बायाँ हाथ बन सकें। आप समाज का और मिशन का जो काम करना चाहते हैं और कर रहे हैं, ये नारियाँ भी करें, इनका भी योगदान हो। मैंने आपको थोड़े-से शब्दों में यह कहा कि इनको भी आगे आना चाहिए। बेटे! आज आपकी विदाई है। संपूर्ण हृदय से हम दोनों का आपके साथ आशीर्वाद है और हम भावनात्मक रूप से प्रत्येक परिजन के माथे पर तिलक करते हैं और यह कहते हैं।

बेटे! जैसे अभी एक लड़के ने गाया था— तिलक तुम्हारे भाल पर। हमारी भावनाओं का यह तिलक आज प्रत्येक बच्चे और बच्ची के माथे पर है। इस तिलक को आप याद करना कि यह जो तिलक लगाया गया है। किसी शुभ कार्य के लिए और किसी ऊँचे उद्देश्य के लिए, हमारे भाल पर तिलक लगाया गया है, उसको आप याद रखना। बस, इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी बात को खतम करती हूँ। ॥ ॐ शांतिः ॥

एक गुरुकुल के दो शिष्य अपने गुरु के साथ नदी स्नान को गए। स्नानोपरांत दोनों ध्यान लगाकर बैठ गए। अचानक उन्हें एक डूबते बालक की आवाज सुनाई पड़ी। सुनते ही एक शिष्य पूजा छोड़कर नदी में कूद गया और डूबते बालक को बचा ले आया। परंतु दूसरा शिष्य पूजा ही करता रहा। उनके गुरु सारी घटना के साक्षी थे।

उन्होंने उससे पूछा—"वत्स! क्या तुमने उस बालक की पुकार नहीं सुनी थी?" वह शिष्य बोला—"गुरुदेव! सुनी तो थी, परंतु पूजा मध्य में कैसे छोड़ सकता था? छोड़ने पर क्या मैं पाप का भागी नहीं होता?"

गुरु बोले—"दुर्भाग्य है वत्स कि इतने वर्ष धर्मशास्त्रों का अध्ययन करने के बाद भी तुम धर्म का सार नहीं समझ पाए। धर्म का सार थोथे कर्मकांड में नहीं, बल्कि पीड़ित मानवता की सेवा करने में है। सच्चे धर्म का पालन तो दूसरे शिष्य ने किया है।"

सतयुग का सूर्योदय

सतयुग का सूर्योदय शतवर्षीय कठिन तप-साधना का परिणाम है। लगातार सौ वर्षों तक आसुरी अँधियारे से जूझने, असंख्यों घात–प्रतिघात सहने, अनगिनत घाव झेलने की यह भावी सुखद परिणति है। बीत रही इस सघन तमिस्रा में भारत माता ने, धरतीमाता ने और स्वयं आदिमाता प्रकृति ने क्या–क्या कष्ट सहन किए हैं, इसे या तो कोई भुक्तभोगी बता सकता है अथवा कोई अनुभवी। न जाने कितनी बार, कहना चाहिए असंख्य बार, इनकी छाती से लहू बहा, इनकी संतानें क्षत–विक्षत हुईं, अस्तित्व संकट में पड़ा।

हर बार करुण क्रंदन के साथ अपमान, उपहास और आसुरी अट्टहास से भरा–पूरा समय रहा है यह। अब तक सामान्य जन अपनी हर विपदा में यही सोचता रहा है कि भला करते रहने पर बुरा क्यों होता है? अब किसे कौन समझाने बैठे कि आसुरी प्रकोप में यही होता रहता है। आसुरी अँधियारे में जीवनमूल्यों की दुर्गति, जीवन एवं जगत् की दुर्दशा के सिवा और हो भी क्या सकता है?

इसी से जूझने के लिए, इसे मिटाने के लिए ही तो भारतमाता के आँचल की छाँह में, आँवलखेड़ा गाँव में पूजास्थली पर एक दीया जला था। इस अखंड दीप से बाद में घर–घर में अनेकों व असंख्य दीप जले। यहाँ आरंभ हुई गायत्री–साधना घर–घर में, जन–जन में आरंभ हुई। अखंड दीप की ज्योति के साथ गायत्री–साधना की ज्योति भी मिल गई। घर–घर में जले ये दीप जन–जन के मन में भी जले। इन सभी दीयों ने मिलकर समूचे देश व धरती में दीपावली का उजियारा उत्पन्न किया। हम सबका आध्यात्मिक नेतृत्व करने वाले हमारे आराध्य ने हमें यही बताया–समझाया था कि सूर्योदय तो समय पर ही होगा, सतयुग तो समय पर ही आएगा; लेकिन तब तक इस अँधियारे में हमें इतने दीप जलाए रखने हैं कि किसी को भी इस घने अँधियारे में भटकना न पड़े, किसी को अपनी राह न भूलनी पड़े। किसी को ठोकर खाकर गिरना न पड़े, किसी को घाव और चोट का दरद न सहना पड़े। बस, इसीलिए हम सबको मिलकर अपने–अपने दीए जलाए रखने हैं। जीवन–ज्योति भले ही बुझ जाए, लेकिन गायत्री–साधना के ये असंख्य दीए यों ही जलते रहने चाहिए।

आसुरी अँधियारे में जीवनमूल्यों की दुर्गति, जीवन एवं जगत् की दुर्दशा के सिवा और हो भी क्या सकता है?

इसी से जूझने के लिए, इसे मिटाने के लिए ही तो भारतमाता के आँचल की छाँह में, आँवलखेड़ा गाँव में पूजास्थली पर एक दीया जला था।

हम सभी गायत्री परिवार के परिजनों ने मिलकर यही किया है। हमने अपने घर में, अपने मन में कभी भी इन दीयों का उजियारा कम नहीं

होने दिया। जब तक जिसकी जीवन बाती ने साथ दिया, तब तक वह अपने दीए में साधना का तेल उँड़ेलता गया। जब जीवन की बाती समाप्त होने लगी, तब उसने अपनी संतानों को यही सीख दी कि घर में, मन में यह दीया कभी बुझना नहीं चाहिए।

हमें अपने गुरु भगवान से यही सीख मिली है। उन्होंने यही कहा था कि तुमको—घर के प्रत्येक सदस्य को यही सीख व सिखावन देकर विदा ले रहा हूँ। कहना न होगा कि गायत्री परिवार के प्रत्येक कार्यकर्त्ता की भावी पीढ़ियों ने यह सीख मानी और तभी तो सभी घरों में, सभी के मन में गायत्री-साधना के दीए आज भी यथावत् वैसे ही जगमगा रहे हैं, जैसे कि शांतिकुंज में गायत्री, महासाधना का अखंड दीप जगमगा कर अपने कार्यकर्त्ताओं, परिजनों व स्वजनों में निरंतर प्रकाश, प्राण व प्रेरणा भर रहा है।

बीत रहे इन सौ वर्षों में न तो कभी हम सबका आध्यात्मिक नेतृत्व करने वाले परमपूज्य गुरुदेव, भगवान महेश्वर महाकाल ने हममें से किसी का आधे क्षण के लिए भी साथ छोड़ा और न हममें से किसी ने उनका अनुगमन, अनुसरण करने में कोई कोर-कसर छोड़ी। वर्ष 1926 ई० की वसंत पंचमी में आरंभ एक से हुआ। उन एक ने ही **'एकोऽहं बहुस्याम्'** का संकल्प लिया था; जो बढ़ते-बदले वर्षों के साथ एक से सौ, सौ से हजार, हजार से लाख, लाख से करोड़ और करोड़ से अरब बनने की यात्रा में गतिशील हो रहा है।

इन सौ वर्षों में हम सभी सौ गुना बढ़े हैं, बढ़ रहे हैं और बढ़ते रहेंगे। अच्छी बात यह है कि इस बढ़ने के क्रम में हममें से कोई भी यह कभी नहीं भूला कि हम असंख्य होकर भी एक हैं। वही एक जिसने आरंभ में दीया जलाया था, जिसने मशाल थामी थी और वही एक—जो अब सौ वर्षों के बाद हम सभी की साधना-ज्योति को स्वयं की महासाधना में सम्मिलित कर स्वयं सतयुग का सूर्य बनकर प्रकट होने वाला है।

'सतयुग' शब्द हम सबने सुना है। हममें से कइयों ने इसे पढ़ा भी है। कभी पुराणों में, तो कभी रामायण-महाभारत में और जब से गुरुदेव ने सतयुग की वापसी का उद्घोष किया, तब से अब तक हममें से हरेक को इसकी प्रतीक्षा बनी हुई है। सतयुग शब्द

काल को परिवर्तित, प्रवर्तित एवं प्रत्यावर्तित करने की महासामर्थ्य रखने वाले भगवान महाकाल ने सत को पुनः स्थापित करने का संकल्प लिया है। उन्होंने पुनः सत को उसकी स्वर्णिम आभा वापस करके, उसे स्वर्ण सिंहासन, स्वर्ण मुकुट एवं स्वर्णिम राजदंड सौंपकर सतयुग की प्रतिष्ठा करने का वरदान दिया है। यही है सतयुग की वापसी। यही है सतयुग का भाग्योदय, यही है सतयुग का सूर्योदय।

के श्रवण व मनन के साथ हम सब इसकी प्रतीक्षा ही तो कर ही रहे हैं, चलो आज इसका अर्थ और मर्म भी जान लेते हैं। सतयुग के सत शब्द में, सत्य, सत्त्व, सत् सभी के अर्थ व भाव एक साथ समा गए हैं। जब इनका वर्चस्व, बाहुल्य एवं बोलबाला हो जाए, तो समझो कि सतयुग आने वाला है और आ गया है। प्रकृति के तीन गुणों में अभी की स्थिति में—सत-रज-तम में से सत कहीं दिखाई नहीं देता।

इसे न तो जीवन में ढूँढ़ा जा सकता है और न जगत् में। यह तो बस, पुस्तकों के काले अक्षरों की कालिख में कहीं दबा-छिपा पड़ा है। तम ने अपने

अँधियारे में और रजस् ने अपने कर्मों के कोलाहल में इसे कब, कहाँ दबा दिया; पता ही नहीं चलता है। तमस् की तामसिकता ने, रजस् की राजसिकता ने इसे कितना कुचला, मसला और रौंदा है; इसका कोई लेखा-जोखा किसी के पास नहीं है।

अब तो हालत यह है कि हममें से किसी को इसकी सिसकियाँ भी नहीं सुनाई देतीं, लेकिन आने वाले समय में ये बीते जमाने की बातें बनने वाली हैं। काल को परिवर्तित, प्रवर्तित एवं प्रत्यावर्तित करने की महासामर्थ्य रखने वाले भगवान महाकाल ने सत को पुनः स्थापित करने का संकल्प लिया है। उन्होंने पुनः सत को उसकी स्वर्णिम आभा वापस करके, उसे स्वर्ण सिंहासन, स्वर्ण मुकुट एवं स्वर्णिम राजदंड सौंपकर सतयुग की प्रतिष्ठा करने का वरदान दिया है। यही है सतयुग की वापसी। यही है सतयुग का भाग्योदय, यही है सतयुग का सूर्योदय।

इस सबके कर्त्ता-धर्ता वे ही हैं, जिन्होंने पिछले युग में अर्जुन को गीता सुनाते हुए धरती और मानवता को वचन दिया था—**'संभवामि युगे-युगे'**। जिन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा था—**'अहमेवाक्षयः कालो'** मैं ही हूँ अक्षय काल—महाकाल। उन्होंने ही कहा था—**'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो'** मैं हूँ बढ़ा हुआ काल, जो बढ़े हुए दुष्टों का नाश करने के लिए प्रकट हुआ है। उन्होंने कुरुक्षेत्र में घोषणा की थी—**'परित्राणाय साधूनां-विनाशाय च दुष्कृताम्'** साधुजनों-सज्जनों का परित्राण करना, उनके दुःख दूर करना तथा दुर्जनों का विनाश करना मेरा स्वाभाविक कर्म है। युग बदला, तो नाम-रूप भी बदला। नहीं बदले, तो बस उनके वचन, उनकी प्रतिज्ञा, उनका स्वभाव और उनके कर्म।

सतयुग की वापसी, उन्हीं का संकल्प है। उन्हीं की उद्घोषणा व उद्घोष है। इस शतवर्षीय महातप-साधना के साधक भी वे ही हैं, वरदान और वरदाता भी वे ही हैं। जान सकें तो जानें, पहचान सकें तो पहचानें, परख सकें तो परखें। सतयुग का सूर्योदय—भारतमाता, धरतीमाता एवं आदिमाता प्रकृति का भाग्य व भविष्य है। यही ईश्वरीय निर्णय व निश्चय है। नियति का अकाट्य विधान है। ऐसा होने पर सत्य, सत्त्व व सत् का वर्चस्व होगा। तब सत का ही तम एवं रज पर नियंत्रण होगा। ये अपनी मनमानी न कर सकेंगे। सज्जनों को भयभीत न होना पड़ेगा, भयभीत तो दुर्जन-दुराचारी होंगे। कर्मफल-विधान ही धरती व जगती का संविधान होगा। जीवन व जगत् का इसी के अनुरूप संचालन होगा। जैसे सौ डिगरी पर पानी स्वयं ही उबलने-खौलने लगता है। वैसे ही ठीक सौ वर्ष पूर्ण होने पर अर्थात 2026 के बीत जाने के बाद सतयुग के सूर्योदय का प्रकाश प्रकृति में फैलने लगेगा। प्रकृति में फैलती प्रकाश-किरणों की अनुभूति सभी कर सकेंगे। ❑

दृश्य और प्रत्यक्ष परिस्थितियों का विश्लेषण करने वालों और निष्कर्ष निकालने वालों की तुलना में हमारे आभास इन दिनों सर्वथा भिन्न हैं। सघन तमिस्रा का अंत होगा। उषाकाल के साथ उभरता हुआ अरुणोदय अपनी प्रखरता का परिचय देगा। एक- एक करके सभी संकट टल जाएँगे। अणुयुद्ध नहीं होगा और यह पृथ्वी भी वैसी बनी रहेगी, जैसी अब है। प्रदूषण को मनुष्य न सँभाल सकेगा, तो अंतरिक्षीय प्रवाह उसका परिशोधन करेंगे। अगले दिनों मनीषियों की एक नई बिरादरी का उदय होगा, जो देश, जाति, वर्ग आदि के नाम पर विभाजित वर्तमान समुदाय को विश्व नागरिक स्तर की मान्यता अपनाने, विश्व परिवार बनाकर रहने के लिए सहमत करेंगे और वह परिस्थितियाँ उत्पन्न करेंगे, जिसे पुरातन सतयुग के समतुल्य कहा जा सके।

नवजागरण की प्रभातवेला

व्यक्ति की आंतरिक उत्कृष्टता के आधार पर यह सुनिश्चित होता है कि वह कितना सुखी रहेगा और अपने संपर्क क्षेत्र को शांति एवं प्रगति से कैसे लाभान्वित करेगा। परिस्थितियाँ मन:स्थिति की प्रतिक्रिया भर हैं, मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है। इस सनातन तथ्य को कोई भी अपने चिंतन और चरित्र के अनुरूप उत्थान और पतन का अवसर प्रस्तुत करते हुए देख सकता है।

इसी आधार पर वर्तमान की विभीषिकाएँ निरस्त होनी हैं और भविष्य की उज्ज्वल संभावनाएँ साकार होनी हैं। निस्संदेह रूप में यदि मनुष्य की अंतरात्मा को जगाया जा सके, तो सुख-शांति की समग्रता से भरा नवसृजन एवं युग परिवर्तन का आधार तैयार होता जाएगा।

इसी पृष्ठभूमि में युगांतरीय चेतना प्रकट और प्रखर होती चल रही है। वातावरण की विषाक्तता में संदेह नहीं, तो भी मानव अंतरात्मा इतनी समर्थ है कि अँधेरे का दबाव उसे मूर्च्छित भर कर सकता है—आत्यातिक हनन करने में सफल नहीं हो सकता।

भयानक ग्रीष्म में धरती की घास सर्वत्र सूख जाती है तो भी उसकी जड़ों में अमृत्व विद्यमान रहता है। ज्यों ही बादल बरसते हैं, देखते-देखते सूखी जड़ें उगती और धरती पर मखमली कालीन की तरह फैलती चली जाती हैं। पतनोन्मुखी गुरुत्वाकर्षण निश्चित रूप में प्रबल है, वह उत्थान को पतन में परिणत करने के लिए सतत संलग्न रहता है, फिर भी ऊर्ध्वगमन की प्रक्रिया निराश नहीं होती। अग्नि की लपटें ऊपर ही उठती हैं, पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण इन्हें पराभूत नहीं कर पाता।

इन शाश्वत सिद्धांतों ने आज की विषम वेला में अपनी प्रामाणिकता का परिचय देने के लिए अग्नि परीक्षा में होकर गुजरना स्वीकार कर लिया है। प्रस्तुत विषाक्तता से जूझने के लिए सृजन शक्तियों ने समय की चुनौती स्वीकार की है और कहा है ध्वंस नहीं, सृजन जीवंत है; असत्य नहीं, सत्य प्रबल है।

नियंता का समर्थन पतन के नहीं, उत्थान के साथ है। अंधकार कितना ही सघन या विस्तृत क्यों न हो, उसे दीपक की एक छोटी-सी बाती ललकारती रहती है। ऐसे में परिस्थितियों की विषमता देखकर सृजन के मुख पर मलिनता लाने का कोई कारण नहीं।

नवजागरण की इस प्रभात वेला में इन दिनों सर्वत्र नए ढंग से सोचने और नया क्रम अपनाने की हलचल दृष्टिगोचर हो रही है। सघन तमिस्रा में गहरी निद्रा बनी रहे और प्राणी मृतवत् पड़ा रहे तो आश्चर्य की बात नहीं, किंतु जब दिनमान की प्रखरता बढ़ती ही चल रही हो और हलचलों में तूफानी गतिशीलता उछल रही हो, तो प्रमादी व्यक्ति भी लंबी चादर तानकर सोए एवं निष्क्रिय पड़े नहीं रह सकते।

स्वयं न जगें तो समय जगा देता है। कोई कुछ करना न चाहे तो भी परिस्थितियाँ कुछ करने-कराने के लिए विवश करती हैं। इन दिनों ऐसा ही कुछ हो रहा है। जागरण का दौर शरीरगत सक्रियता में नहीं, मनोगत विचार-मंथन में भी प्रकट और प्रखर हो रहा है। चिंतन को विगत समय से एक नई दिशा मिल रही है। पिछले दिनों पेट भरना ही प्रमुख रहा है।

लोभ को प्रमुखता मिली है और विलास एवं संचय को ही सौभाग्य का चिह्न समझा जाता रहा है, लेकिन आज ऐसा नहीं रहा। जीवंतों में से हरेक को यह विचार करना पड़ रहा है कि परिवर्तन की इस पुण्यवेला में क्या उसे भी कुछ करना पड़ेगा? समय के साथ चलने के बिना क्या उसका भी काम नहीं चलेगा?

यह अंत:मंथन उन्हें खासतौर से बेचैन कर रहा है, जिन्हें मानवीय आस्थाएँ अभी अपने जीवंत होने का प्रमाण देतीं और कुछ सोचने-करने के लिए नोचती-कचोटती रहती हैं। उन्हें सोचना पड़ता है कि परिवर्तन से भरी इस युगसंधि में उस तरह नहीं रहा जा सकता, जैसा कि पिछले दिनों चलता रहा है।

इन दिनों न समय की माँग अनसुनी की जा सकती है और न ही आत्मा की पुकार को देर तक दबाया जा सकता है। विनाश से जूझने और विकास को सोचने के लिए जब जागरूकों की सेना कमर कसकर अग्रगामी हो रही हो, प्रयाण की शंख-ध्वनि से दिगंत गूँज रहा हो तो मुँह छिपाकर बैठे रहना सरल नहीं है। लोक-भर्त्सना से तो किसी बहाने बचा भी जा सकता है, पर आत्म-प्रताड़ना से छुटकारा कैसे मिले?

यह एक अद्‍भुत समय है, जिसमें व्यक्ति एवं समाज का समान रूप से हित-साधन होना है, जिसमें आत्मा व परमात्मा को समान रूप से संतुष्ट होने का अवसर है। महानता का रास्ता ऐसा है; जिस पर वाहन के सहारे नहीं, अपने पैरों से ही चलना पड़ता है। जो उतना साहस सँजो लेते हैं, उनके लिए मंजिल के हर विराम पर अपेक्षाकृत अधिकाधिक आनंद की सामग्री मिलती जाती है।

प्रगति के हर चरण पर पहले से अधिक प्रसन्नता की स्थिति उपलब्ध होती है। व्यष्टि को क्षुद्र और समष्टि को महत् कहते हैं। विराट ही ब्रह्म है। संकीर्ण स्वार्थपरता के कीचड़ में सना हुआ व्यक्तिवाद ही भव-बंधन है। इसी में फँसा हुआ कुंभीपाक नरक में सड़ने का कष्ट उठाता है।

कहते हैं कि नरकों में एक ऐसा भी है, जिसमें घड़े में बंद होकर रहने का कष्ट सहना पड़ता है। यह कुंभीपाक व्यथा और कुछ भी नहीं, व्यक्तिवादी संकीर्णता में आबद्ध रहने की घुटन भर है। पेट और प्रजनन में लिप्त मनुष्य सोचता है कि वह दूसरों की तुलना में अधिक चतुर है।

लेना सबसे, देना किसी को कुछ नहीं की नीति आकर्षक भी लगती है, चतुरतायुक्त भी, किंतु वास्तविकता कुछ दूसरी ही है। ऐसे मनुष्य अत्यधिक घाटे में रहते हैं। आत्मसंतोष, लोकसम्मान और दैवी अनुग्रह के तीनों ही महान लाभों से उन्हें सर्वथा वंचित रहना पड़ता है, फिर प्रगति भी सीमित क्षेत्र में ही संभव होती है।

चतुर लोगों की इन दिनों भरमार है। बुद्धिमानों के दर्शन दुर्लभ हो गए हैं। बुद्धिमत्ता का निर्धारण और निर्देशन एक है कि महानता का मार्ग अपनाया जाए। इसमें किसानों को बीज बोने, उद्योगी को कारखाना लगाने, विद्वान को अध्ययन करने के समय त्याग करना पड़ता है। लाभदायक प्रतिफल को देखते हुए यह आरंभिक विनियोग किसी भी दृष्टि से घाटे का सौदा नहीं है।

महानता का वृक्षारोपण कुछ ही समय में कल्पवृक्षों के नंदनवन की तरह फूलता-फलता है। तत्काल होने की आतुरता हो तो फिर हथेली पर सरसों जमाकर दिखाने वाली बाजीगरी के कुचक्र में फँसने और जंजालों में भटकने के अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं लगता।

महानता का अवलंबन करके असंख्य व्यक्ति क्षुद्र परिस्थितियों में जन्मने-पलने पर भी अपनी विशिष्टता के आधार पर उच्च स्थिति पर पहुँचे और यशस्वी बने हैं।

इन उदाहरणों में एक ही निष्कर्ष निकलता है कि महानता उस उद्यान को लगाने की तरह है, जो आरंभ में परिश्रम और साधना चाहता है, किंतु समयानुसार सुरभि और संपदा के उभयपक्षीय अनुदान उत्साहवर्द्धक मात्रा में प्रदान करता है।

वह महानता आखिर है क्या, जिससे व्यक्तित्व विशिष्टतायुक्त एवं वर्चस्व वैभवसंपन्न बनता चला जाता है? इसका उत्तर एक ही है, समष्टि की साधना, लोकसेवा, जन-कल्याण। इसे अपनाने का एक ही उपाय है, स्वार्थ को परमार्थ के निमित्त विसर्जित करना।

इस दुस्साहस को जो जितनी मात्रा में क्रियान्वित कर पाता है, वह उसी अनुपात में अपने को बुद्धिमान एवं भाग्यवान अनुभव करता है। परिणामों की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर सकने वाले अपने अनुभव एक स्वर से यही सुनाते रहे हैं कि समष्टि की सेवा-साधना से बढ़कर लाभदायक उद्योग इस संसार में और कोई है ही नहीं।

इसे अपनाने पर स्वार्थ और परमार्थ की उभयपक्षीय पूर्ति सहज ही होती है। इस युगसंधि की ऐतिहासिक वेला में दूरदर्शिता और सदाशयता की संयुक्त माँग एक ही है कि इन दिनों संकीर्ण स्वार्थपरता पर अंकुश लगाया जाए और जो बच सके, उसे नवसृजन के पुण्य-प्रयोजन में भावनापूर्वक लगाया जाए।

धन का अभाव हो सकता है, किंतु श्रम, समय एवं मनोयोग की किसी के पास भी कमी नहीं हो सकती है। आवश्यकता वैयक्तिक जंजालों को थोड़ा हलका करने की है, जिससे उस बचत को उन परमार्थ प्रयोजनों में लगाया जा सके, जो नवसृजन के इस महापर्व पर मानवीय सभ्यता-संस्कृति के संरक्षण-संवर्द्धन हेतु अभीष्ट हैं।

युग निर्माण आंदोलन इसी दिशा में प्राणपण से आगे बढ़ रहा एक महाअभियान है। इस युगधर्म में लगाया गया अपना अंश किसी भी रूप में घाटे का सौदा नहीं है, बल्कि इसमें हर दृष्टि से बहुगुणित होकर परिणाम का फलित होना सुनिश्चित है। □

पता-फोन परिवर्तन सूचना

अखण्ड ज्योति संस्थान का स्थान परिवर्तित हो गया है, नया पता अब इस प्रकार है—

अखण्ड ज्योति संस्थान

बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड, जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)

बदले हुए नए फोन नंबर

दूरभाष नंबर : (0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449

मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039

कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस.एम.एस. न करें

नया ई-मेल-akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

गुरुवर का संदेश

बच्चो! मेरे सुनो ध्यान से, आगे कदम बढ़ाना है।
हमने जो योजना बनाई, सभी जगह पहुँचाना है॥

कर्त्तव्य निभाया हमने अपना, आधार दिया-उत्थान दिया,
सहे अनेक कष्ट पर तुमको, प्यारसहित सम्मान दिया,
करना नहीं कुछ भी चिंता तुम, कभी नहीं घबराना है।
हमने जो योजना बनाई, सभी जगह पहुँचाना है॥

नहीं दिखाई पड़ता हूँ, पर, पास तुम्हारे रहता हूँ,
अति आवश्यक साधन-सामग्री, सतत भेजता रहता हूँ,
डटा मोर्चे पर हूँ अपने, तुम्हीं यही समझाना है।
हमने जो योजना बनाई, सभी जगह पहुँचाना है॥

तुम अपने कर्त्तव्य निभाओ, पूरी जिम्मेदारी से,
कदम बढ़ाओ पूरी ताकत से, मिलकर समझदारी से,
जब तक मिले न पूर्ण सफलता, नहीं तुम्हें रुक जाना है।
हमने जो योजना बनाई, सभी जगह पहुँचाना है॥

हम गाएँगे गीत खुशी के, तुमको खूब हँसाएँगे,
हर उर में देवत्व उदयकर, धरती स्वर्ग बनाएँगे,
तुम सबको जीवन से मेरे, पढ़ना और पढ़ाना है।
हमने जो योजना बनाई, सभी जगह पहुँचाना है॥

—विष्णु कुमार शर्मा 'कुमार'

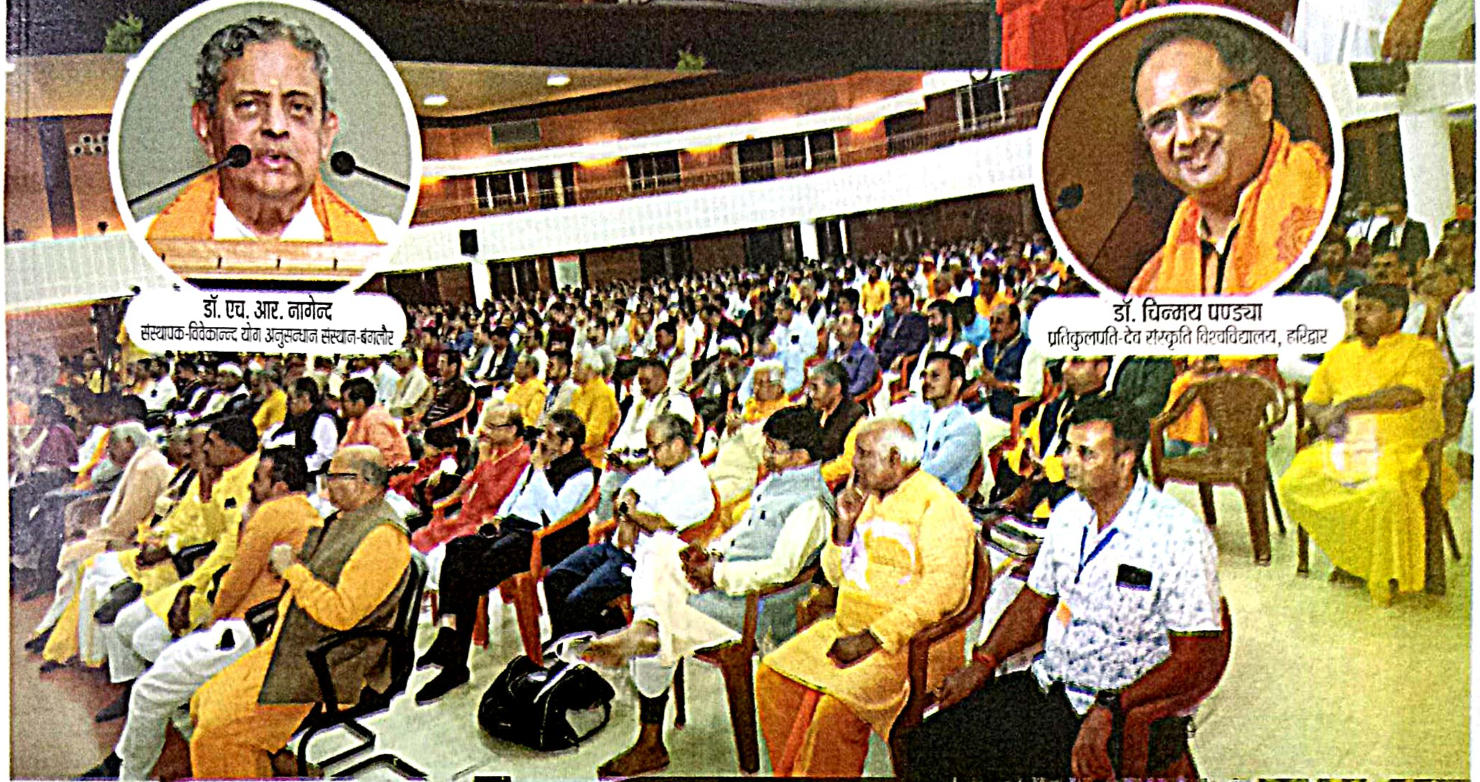

अंतरराष्ट्रीय योग शिखर सम्मेलन-2023 देव संस्कृति विश्वविद्यालय में गणमान्य अतिथियों की उपस्थिति में संपन्न

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-01-2024
Regd. N0. Mathura-025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2024-2026

युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय, राष्ट्रीय सेवा योजना क्षेत्रीय निदेशालय (उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखंड) एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में संपन्न 'पूर्व गणतंत्र दिवस परेड शिविर (मध्यक्षेत्र)-2023'

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org